श्री रास पंचाध्यायी

प्रणय रसवर्द्धनी

लेखक :

ज्योतिर्विद पौराणिक आचार्य पं० रघुवर दयालु व्यास

गजा पायसा, मथुरा

श्री सर्वेश्वरो विजयते

श्री रास पंचाध्यायी

प्रणय रस वर्द्धनी

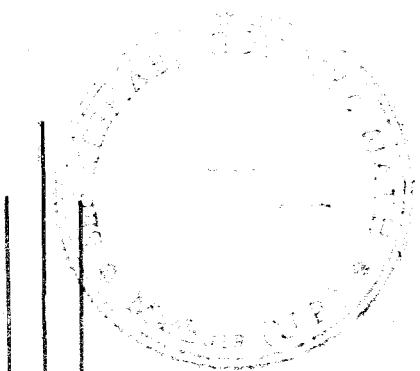

लेखक :

ज्योतिर्विद पौराणिक आचार्य पं० रघुवर दयालु व्यास

श्री पुरुषोत्तम ज्योतिष कार्यालय

राजा पायसा, मथुरा

प्रकाशक :
श्री पुरुषोत्तम ज्योतिष कार्यालय
गजा पायसा, मथुरा (उ० प्र०)

●

प्रथम संस्करण १०००
सम्वत् २०४४
विजयादशमी

●

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

●

मूल्य : बीस रुपये

●

मुद्रक
व्यास प्रिन्टिंग प्रेस,
गजा पायसा, मथुरा (उ० प्र०)

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

आनन्द मात्र मकरन्दमनन्त गन्धं,
योगीन्द्र सुस्थिर मिलन्दमपास्त बन्धम् ।
वेदान्त सूर्य किरणैक विकास शीलं,
हेरम्ब पाद शरदम्बुज मानतोऽस्मि ॥

❋ श्री राधा सर्वेश्वरो विजयते ❋

समर्पण

निखिल महीमण्डलाचार्य चक्र चूड़ामणि सर्वतन्त्रस्वतन्त्रानन्तानन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति **श्री श्रीजी श्रीराधासर्वेश्वर शरणदेवाचार्यजी महाराज** के कर कमलों में श्री रास पंचाध्यायी प्रणय रस वर्द्धनी श्रद्धा सहित समर्पित है।

रघुवर दयालु व्यास

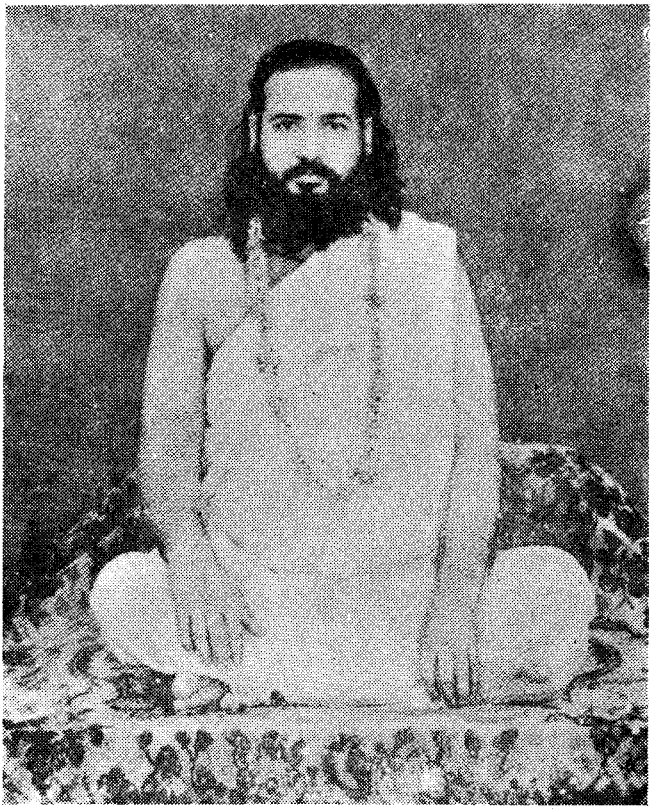

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु
श्री निम्बार्काचार्य श्री श्रीजी
श्रीराधासर्वेश्वरशरण
देवाचार्यजी
महाराज

एक संक्षिप्त परिचय

पं० प्रवर श्री रघुवरदयालु व्यास

भर्तृहरि ने सत्पुरुषों के स्वभाव का वर्णन करते हुए एक सुन्दर बात कही है—नम्रत्वेनोन्नमन्तः अर्थात् वे नम्रता द्वारा ऊपर उठते हैं। इस उक्ति की सचाई का अनुभव आज मैं ये पंक्तियाँ लिखते हुए स्वयं कर रहा हूँ। श्रद्धेय आचार्य श्री रघुवर दयालु जी व्यास ब्रजक्षेत्र के सुविख्यात भागवत कथाकार एवं ज्योतिषी हैं। मैं इनकी विद्वता एवं कीर्ति से बचपन से ही सुपरिचित रहा हूँ। मेरा मन जहाँ आपकी ज्ञान-गरिमा से अभिभूत हो जाता है वहीं साथ-साथ आपकी सरलता से श्रद्धानत भी हो जाता है। अतः आज जब मैं ये परिचय पंक्तियाँ लिख रहा हूँ—तो मुझे प्रसन्नता के साथ-साथ स्वाभाविक संकोच भी हो रहा है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि, मैं आपके बहुआयामी विरल गुण सम्पन्न तप-त्याग युक्त यशस्वी व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय नहीं दे पाऊँगा फिर भी, मैं अपनी भावनाओं को श्रद्धासुमनवत् उनके परिचय के रूप में व्यक्त कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ।

पंडित प्रवर श्री रघुवर दयालु जी व्यास का जन्म मथुरा में कार्तिक शुक्ल-३ संवत् १९६८ वि० को हुआ है। आपके पिताश्री श्यामसुन्दर लालजी ने आपको अपने नानाजी पं० पुरुषोत्तम लाल जी व्यास को गोद दे दिया था जिनके स्नेह और पांडित्य के आप उत्तराधिकारी बने। पंडित श्री पुरुषोत्तम

लाल जी व्यास श्री राधा गोविन्द भगवान के अनन्य उपासक थे तथा श्रीमद्भागवत् के सुप्रसिद्ध वक्ता थे। आपका संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और उर्दू भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था तथा आपकी साहित्य एवं संगीत में अच्छी गति थी। आप भागवत के गूढ़, प्रसंगों की सुन्दर व्याख्या बड़ी मधुर वाणी में अत्यन्त सरल भाव से करते थे और आवश्यकतानुसार भागवत के श्लोकों को अनेक राग-रागनियों में निबद्ध करके सुनाया करते थे। यही कारण है कि, आपकी कथा सुनने के लिए सदैव ही श्रोतागण उत्सुक बने रहते थे। पिताश्री के ये ही विशिष्ट गुण पंडित प्रवर श्री रघुवर दयालु जी व्यास को विरासत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी कथा में भी श्रोताओं की मंत्र-मुग्ध-मुद्रा मैंने देखी है। आप गूढ़ से गूढ़ प्रसंग को भी सरलता से सहज ही स्पष्ट कर देते हैं।

आपने संस्कृत साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है और ज्योतिष पुराण तथा कर्मकाण्ड पर सम्यक भाव से अध्ययन-मनन कर अधिकार प्राप्त किया है। आप अपनी अठारह वर्ष की आयु से श्रीमद्भागवत की कथा कह रहे हैं। आपकी प्रधानता में अनेक बार भागवत सप्ताह हो चुकी है तथा एक बार आप अष्टोत्तर शत भागवत परायण में प्रधान व्यास के आसन पर विराज कर कथा कह चुके हैं। आपकी कीर्ति का विस्तार नगर में ही नहीं है अपितु, देश में दूर-दूर तक है। आपकी कथायें, बम्बई, कलकत्ता, हरिद्वार, काशी, अयोध्या, जगन्नाथ-पुरी, नाथद्वारा एवं द्वारकापुरी आदि नगरों में अनेक बार हो चुकी हैं। आप अपनी कथा को समाज सेवा और भगवत सेवा का रूप मानते हैं अतएव, आपको कथा-कार्य अति रुचिकर बना हुआ है। आयु अधिक होने पर भी आप इस कथा-कार्य

को बराबर निभा रहे हैं, यह आपकी श्रीमद्भागवत के प्रति निष्ठा का प्रतीक तो है ही, साथ ही यह आपके हृदय की भावनाओं का भी परिचायक है।

विगत दस वर्षों से आपने अपनी वाणी के साथ अपनी लेखनी से भी समाज हित के लिए महत्वपूर्ण अवदान प्रारम्भ कर दिया है। आपने अपने दीर्घकालीन अनुभव, चिन्तन-मनन को लिपिबद्ध करके जो योगदान धार्मिक-जगत को दिया है, वह वस्तुतः अत्यन्त सराहनीय है।

आपकी अब तक पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके नाम हैं—भागवत दृष्टान्त माला भाग–१, भाग–२, ज्ञानमाला ज्योतिष माला। आपकी अप्रकाशित पुस्तकें हैं–सम्पूर्ण भागवत, मथुरा गमन माला, बाल चरित माला, भक्ति चरित माला तथा उद्धव चरित माला। ये सभी पुस्तकें सरल भाषा में, साहित्य सौष्ठव के साथ लिखी हुई हैं। इन्हें कोई भी साधारण शिक्षा प्राप्त व्यक्ति पढ़ समझ सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक—'रास पंचाध्यायी-रसवर्द्धनी' भी आपकी एक सर्वोपयोगी पुस्तक हैं। जिन प्रसंगों और विषयों को पंडित-समाज में अब तक गूढ़ समझा जाता था, उनमें अब इस प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, यह एक सर्व हितकारी प्रसन्नता की बात है। ऐसे लेखन और प्रकाशन का समाज में स्वागत होना चाहिए। श्रद्धेय श्री व्यास जी अपनी इस बड़ी आयु में लेखन की यह कठोर तपस्या कर रहे हैं, इससे इनके प्रति मेरा श्रद्धाभाव द्विगुणित हो जाता है। मुझे पूर्ण आशा है कि, यह पुस्तक समाज के लिए हर दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध होगी। श्रद्धेय व्यास जी तो समाज के उन अनुपम रत्नों में से हैं, जिनसे समाज गौरवान्वित माना जा सकता है कहा गया है :—

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।

(इस संसार में अपने ही सुख के लिए सभी जीते हैं लेकिन, जो परोपकार के लिए जीता है, सचमुच वही जीता है।)

अतएव, मैं क्या लिखूँ 'छोटा मुँह बड़ी बात' न मानी जाये, मेरी तो यही कामना है कि, श्रद्धेय व्यास जी का यह स्तुत्य कार्य अन्य विद्वानों के लिए भी प्रेरक सिद्ध हो। इति

डॉ० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल

□ श्री भवन
मण्डी रामदास, मथुरा-२८१००१

भूमिका

जनता जनार्दन की भगवद्विरोधी प्रकृति ही आपत्तियों का मूल कारण बनी हुई है। यह संसारी मोहवश धर्म तथा विश्व रक्षक भगवान को भूल कर संसार के वर्तमान सौन्दर्य से आकर्षित होकर परस्पर होड़ से विषय वासना की सामिग्री के संग्रह करने में लगा हुआ है। मैं मेरा भाव प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इस अधाधुन्ध दौड़ का परिणाम क्या होगा इसका किसी को ध्यान नहीं है।

इस भगवद् विरोधी प्रवृत्ति ने ही आज पारस्परिक विरोध उत्पन्न कर दिया है। यदि हम इस असद् प्रवृत्ति को छोड़ कर भगवत चिन्त वन में लग जायँ तो हम अपना ही नहीं अपितु, समस्त संसार का भला कर सकते हैं। भगवत सेवा ही सच्ची सेवा है विश्वम्भर की वन्दना से ही विश्व की सेवा है। इसी से समस्त संकटों से निवृत्ति होती है।

वन्दना के अनेक साधन हैं। हमारे आचार्यों ने कैसे-कैसे परम सुन्दर मनोरंजक भगवच्चरितों की रचना की है। जिनको बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है अन्य मनोरंजक पाठ्य पुस्तक तो एक बार पढ़ कर ही रख दी जाती है।

हमारे आचार्यों की वाणी को तो बार-बार सुनने की इच्छा होती है।

कृष्णेति मंगलं नाम
यस्य वाचि प्रवर्तते

भस्मी भवन्ति तत्रैव
महा पातक कोटयः

जिस वाणी से श्री कृष्ण श्री कृष्ण यह मंगलमय नाम निकलता है उसके सैंकड़ों महा पातक भस्म हो जाते हैं।

(भक्त रसामृत सिन्धुः)
तन्निर्व्याजं भज गुणनिधे
पावनं पावनानां
श्रद्धारज्यन्मतितरां
मुत्तमश्लोक मौलिम् ॥
प्रोद्यन्नन्तः करण कुहरे
हन्त मन्नाम भानो
राभासोऽपि क्षपयति
महा पातकध्वान्त राशिम् ॥

हे गुणनिधे ! आप श्रद्धा रंजित मति वाले हैं। आप अत्यन्त पुनीत उत्तम श्लोक मौलि श्री कृष्ण भगवान के नाम को निष्कपट भाव से निरन्तर भजन करिये इस नाम रूप सूर्य का आभास मात्र ही हृदय रूप गुहा में जाकर महा पातक रूप अन्धकार का विनाश कर देगा।

हरेर्नमि हरेर्नमि
हरेर्नामैव केवल
कलौ नास्त्येव नास्त्येव
नास्त्येव गति रन्यथा

इस महान कलि काल में केवल हरिनाम ही सार है इसके

अतिरिक्त कल्याण का और कोई साधन नहीं है। भगवान के सामने शुद्ध मन से जो उपासना की जाती है उसका अवश्य फल मिलता है उपासना के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण से ही भगवद् भक्ति प्राप्त होती है जिनकी विवेक दृष्टि पारस्परिक विवाद के कारण नष्ट हो गई है उनको वेदार्थ का बोध कराने के लिए तथा परम कल्याण की प्राप्ति के लिए ही श्री मद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ है।

कृष्णे स्वधामोपगते
धर्मज्ञानादिभिः सह
कलौ नष्ट दृशामेव
पुराणार्कोऽधुनोदितः

धर्म, ज्ञान आदि के साथ जब भगवान श्री कृष्ण चन्द्र स्वधाम चले गये थे। तब जिन मनुष्यों की दृष्टि कलियुग के कारण नष्ट हो गई थी उनके लिये ही इस पुराण सूर्य का उदय हुआ है। श्री मद्भागवत में बारह स्कन्ध हैं जो कि भगवान के बारह अंग हैं। भगवदअंग यथा :—

प्रथम द्वितीयौ चरणौ स्तः
तृतीय चतुर्थौ जानू
पंचमं कटिः। षष्ठं नाभिः
सप्तम अष्टमौ भुजौ
नवमं स्तने। दशमं हृदि
एकादश मुखं। द्वादश ललाटं

इस प्रकार दशम तो हमारे प्रभु का हृदय है। उसमें भी पांच अध्याय जिनका सार हमने लिखा है वह महारास

तो प्राण रूप है। जिस प्रकार बारह स्कन्धः भगवान के श्री अंग हैं। उसी प्रकार भागवत वक्ता श्री शुक के भी बारह नाम हैं। जो कि निकुन्ज भेद से तथा दिव्य कथा भेद से श्रुति संगत नाम हैं श्रीमद्भागवत कल्पद्रुमे यथा :—

आदौश्रुतधरोनाम
द्वितीयो मृदु वाच्छुकः
तृतीयो रसवाङ् नाम
चतुर्थो मोदवाक् शुकः
पंचमः स्फुटवाङ् नाम
षष्टस्त्वमृत वाक् शुकः
सप्तमः कुंजगः साक्षी
सुश्रीवाक् संज्ञकः शुकः
आनन्द वागाष्टमश्च
नवमस्तत्व वाक् शुकः
दशमः कलवाङ् नाम
युक्त वाक् दशमोऽधिकः
द्वादशो गुह्यवाङ् नाम
एवं भेदाश्च द्वादशः

यह शुकदेवजी के एक-एक स्कन्ध के अनुसार बारह नाम हैं। इन नामों से वक्ता का स्वरूप दीखता है तथा सभी प्रसंगो का स्वरूप दीखता है।

इसी प्रकार बारह स्कन्धों को स्वरूपानुसार द्वादशारण्य कहा है। सभी अरण्यों में उनके नामानुसार ही आनन्दमयी लीलाओं का वर्णन किया है।

प्रथम स्कन्ध मोदारण्य है
द्वितीय स्कन्ध रसारण्य है
तृतीय स्कन्ध तत्वारण्य है
चतुर्थ स्कन्ध गुणारण्य है
पंचम स्कन्ध प्रमोदारण्य है
षष्ठ स्कन्ध सर्वार्थदारण्य है
सप्तम स्कन्ध जनतारण्य है
अष्टम स्कन्ध रसका रण्य है
नवम स्कन्ध तत्वारण्य है
दशम स्कन्ध परमात्मारण्य है
एकादश स्कन्ध तत्वारण्य है
द्वादश स्कन्ध मधुरारण्य है

दशम स्कन्ध तो परमात्मारण्य कहलाता है। इसमें भी रास पंचाध्यायी तो स्वरूपारण्य है।

शुकदेवजी ने ही प्रिया प्रियतम की लीला देखी है जैसी आपने देखी है वैसी ही लीला वर्णन करी है। शुकदेवजी को सदा श्री राधारानी का सान्निध्य मिलता था। श्री शुकदेवजी की वाणी ही हमारे रासबिहारी श्री कृष्ण चन्द्र को आकर्षित करती थी।

एक समय भगवान ने व्यास जी से कहा था। ब्रह्म वैवर्त

व्यासत्वदीय तनयः
शुकवन्मनोज्ञ
ब्रूते वचो भवतु
तच्छुक नामतेति ।।

व्यास जी आपका पुत्र शुकदेव शुकवन्मनोज्ञ वाणी बोलता

है अतः इसका नाम शुक है। वैसे तो शुकदेवजी के बारह नाम है। समस्त वेद वेदान्तों का सारश्री भागवत शास्त्र शुकदेवजी के मुख से अमृत की तरह निकला है। इसको भावुकजन ही जान सकते हैं, दूसरा नहीं।

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं,
शुकमुखादमृतदृव संयुतम्।
पिवत भागवतं रस मालयं,
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

भागवत शास्त्र निगम कल्प तरु का रसीला फल है। वह भी शुकदेवजी के मुख से निकल कर तो और भी स्वादिष्ट हो गया है। भागवतजन निरन्तर इसी का पान करते हैं। संसार में सबसे रसीला फल आम का कहलाता है कदाचित् तोता का कुतरा आम का फल मिल जाता है। तब तो उसका स्वाद और भी बढ़ जाता है। किन्तु उस स्वादिष्ट फल में भी एक कमी है कि उसमें गुठली निकलती है। जिसे फेंकना ही पड़ता है। पर भागवत फल में गुठली नहीं है। इसमें तो आदि से अन्त तक रस ही रस भरा हुआ है।

भगवत रसिक रसिक की बातें रसिक बिना कोई समझ सकेना। (भागवत)

भा शब्दः कीर्ति वचनो ग शब्दों ज्ञान वाचकः सर्वेष्ठ बन्धनो वश्च तो विस्तारस्य वाचकः कीर्तेर्ज्ञानस्य सर्वेष्टस्यच विस्तारणादिदं अस्य भागवतं नाम श्री व्यासेनेति कीर्तितम्।

'भा' शब्द कीर्ति वाचक है। 'ग' शब्द ज्ञान वाचक है। 'व' शब्द सर्वेष्ट बन्धन वाचक है। 'त' शब्द विस्तार वाचक

है। कीर्ति ज्ञान सर्वेष्ट बन्धन विस्तार आदि के कारण इसका नाम भागवत है।

प्रेम भक्ति से जो ओतप्रोत है वही भागवत है और भागवत शास्त्र भी प्रेम भक्ति से ही मिलता है।

(भक्तया भागवतशास्त्रम्)

इस शास्त्र के रचयिता श्री वेद व्यास जी हैं।

व्यासेन कृत्वा तु शुभं पुराणं
शुकाय पुत्राय महात्मने यत्
वैराग्य शीलाय च पाठितंवै
विज्ञाय चैवारणि सम्भवाय

व्यास जी ने इस ग्रन्थ की रचना करके वैराग्य शील सम्पन्न अपने पुत्र शुकदेव को पढ़ाया तथा शुकदेवजी ने इसे राजा परीक्षित को सुनाया।

परीक्षित शुक सम्वादो
योऽसो व्यासेन वर्णित
ग्रन्थोऽष्टादश साहस्त्रो
योऽसौ भागवताभिधं

भागवत तो वही है। जिसमें परीक्षित शुक सम्वाद है। भागवतकार ने जगत का उद्धार किया है।

अनर्थोपशमं साक्षात्
भक्तियोग मधोक्षजै
लोकस्याजानतो विद्वान्
श्चक्रे सास्वत सहिताम्

इस सात्वत संहिता के बनाने का तात्पर्य ही यह है कि मनुष्यों की आँखों में पड़े हुए अज्ञान के परदे का हटाना तथा अधोक्षज भगवान में प्रेमाभक्ति को उत्पन्न करना।

भागवत महा पुराण में बारह स्कन्ध और अठारह हजार श्लोक एवं ३३५ अध्याय हैं।

ग्रन्थोष्टादश साहस्त्रः
श्रीमद्भागवताभिधः
पंचत्रिंशोत्तराध्याः
त्रिशती युक्त ईश्वरी

इसके दशम स्कन्ध पूर्वार्ध की २९-३०-३१-३२-३३ यह पाँच अध्याय रास पंचाध्यायी कहलाती है। जिनमें हमारे महाप्रभु रास रासेश्वर की रसमयी लीला वर्णन की है भागवत श्री नन्दनन्दन भगवान की वाङ्मयी मूर्ति कहलाती है तथा बारह स्कन्धों की अंग प्रत्यंग की कल्पना करके श्री रास पंचाध्यायी को पंच प्राण के रूप में माना गया है।

पाँच अध्याय में रास वर्णन किया है कारण कामदेव के पाँच वाण है—उच्चाटन, मोहन, विद्वेष, स्तम्भन, वशीकरण। कामः पंच शरस्मृतः रास की पहली अध्याय में ही कामदेव ने अपने पाँचों वाणों का प्रयोग किया। किन्तु प्रभु ने सभी वांण काट दिये।

१—जैसे उच्चाटन छोड़ा

निशम्य गीतं तदनंग वर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः
आजग्मु रयोन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुंडलाः

जिससे गोपियों का मन उछट गया और सब काम छोड़ कर भगवान को आकर घेर लिया इस अवस्था में बड़े-बड़े जितेन्द्रिय व्याकुल हो जाते हैं। पर प्रभु ने उस बाण को काट दिया।

रजन्येषा घोर रूपा
घोर सत्वनिषेविता
प्रतियात व्रजं नेह
स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः

अरी सुमध्ययाओ, तुम ऐसी रात्री में क्यों आई हो। यहाँ चारों ओर हिंसक जीव डोल रहे हैं अपने-अपने घरों में लौट जाओ भला कोई कामी पुरुष ऐसा कह सकता है।

२—उसी समय कामदेव ने दूसरा तीर छोड़ दिया।

(मोहनास्त्र)

ता वार्यमाणाः पतिभिः
पितृभि भ्रातृ बन्धुभिः
गोविन्दापं हृतात्मानो
न न्यवर्तन्त मोहिताः

इससे वह अत्यन्त मोहित हो गई। जो कोई उनको रोकता है उसकी भी उनको चिन्ता नहीं इस प्रकार मोहन बाण से व्यथित देवियों को देख कर हमारे प्रभु कहते हैं।

तदयात माचिरं गोष्ठं
शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः

देवियो, तुम यहाँ से चली जाओ अपने-अपने पति एवं बान्धवों की सेवा करो अपने बड़ों का अपराध मत करो। इस प्रकार उस मोहन बाण को काट दिया।

३—अब कामदेव ने तीसरा बाण छोड़ दिया। (विद्वेष)

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं
कुशलाःस्व आत्मन्
नित्य प्रिये पतिसुतादिभि
रार्तिदैः किम्

जो गोपियाँ कह रही है हमतो आपके पास आई हैं हमारी तो आपसे प्रीति है। पति पुत्रादि तो सब पीड़ा देने वाले हैं। देखो, कैसा विद्वेष फैला दिया। किन्तु भगवान ने इस बाण को भी काट दिया।

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां
परो धर्मो ह्यमायया

गोपियो, भर्त्ता की निष्कपट भाव से सेवा करना ही स्त्रियों का परम धर्म है। पति कैसा भी हो उसका आदर ही करना चाहिए।

४—इस पर भी जब कामदेव को सन्तोष नहीं हुआ तब उसने स्तम्भन का प्रयोग किया।

पादौ पदं न चलतस्तव
पादमूलात् । यामः कथं
व्रजमथो करवाम किंदा

श्यामसुन्दर, अब हम एक पैर भी नहीं चल सकती। आपके पाद मूल से हटने की हमारी शक्ति नहीं है। कैसा कामदेव ने अपना बल दिखाया कि अब तो गले पड़ गई। यह स्तम्भन है। पर हमारे सरकार ने इस बाण को भी काट दिया।

श्रवणाद्दर्शनाद् ध्यानात्
मयि भावोनु कीतनात्
न तथा सन्निकर्षेण
प्रतियात ततोग्रहान्

व्रज देवियो, मेरी प्रसन्नता के लिये तुमको अपने घर चला जाना चाहिये। दूर से मेरी कथा सुनो दूर से मेरा दर्शन करो। एकान्त में बैठ कर मेरा ध्यान करो मैं पास में रहने से प्रसन्न नहीं होता इसलिये आप अपने-अपने घर पधारिये।

५—अब तो कामदेव हताश हो गया। पर एक और अंतिम बाण छोड़ दिया। (वशीकरण)

वीक्षालकावृतमुखं
तव कुंडल श्री
गण्डस्थलाधर सुधं
हसितावलोकम् ।।

इससे तो गोपियाँ भगवान को पकड़ने का विचार करने लगी। हे प्रियतम ! आपका यह सुन्दर मुख कमल अलकावलियों से सुशोभित, यह कमनीय कपोल जिन पर कुण्डल अपना सौन्दर्य बिखेर रहे हैं। यह तुम्हारे शरणागतों को

अभय देने वाले भुज युगल इनको छोड़ कर अब हम कहाँ जायेंगी। श्याम—हम सब आपकी दासी है। यह रहा अन्तिम वाण कामदेव का पर हमारे ब्रजराज ने इसे भी काट दिया

तासां तत्सौभगमदं
वीक्ष मानं च केशवः
प्रशमाय च प्रसादाय
तत्रै वान्तर धीयत

इस प्रकार ब्रज किशोरियों का सौभग मद देख कर उन पर कृपा करने के उद्देश्य से और कामदेव के मनोरथ अपूर्ण करने के लिये भगवान अन्तर्धान हो गये। कामदेव को तो यहीं परास्त कर दिया—जहाँ कामवासना होती है वहाँ तो पुरुष विह्वल हो जाता है रासलीला तो एक प्रेममयी लीला है प्रेमैव गोप कन्यानां काम इत्यगत्प्रथां।

प्रेम के स्वरूप को पहचानना कठिन है। जिस प्रकार वाणी द्वारा ब्रह्म का वर्णन असम्भव है उसी प्रकार प्रेम का वर्णन भी असम्भव है। जिस प्रेम को वाणी वर्णन कर सकती है वह वाह्य प्रेम कहलाता है। विशुद्ध प्रेम को कोई नहीं पहचान सकता कदाचित् उसे पहचान ने की चेष्टा करता है तो मन से हाथ धोना पड़ता है। प्रेम मार्ग निराला है। जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति किसी अच्छे मधुर पदार्थ को खाकर उसका स्वाद नहीं बता सकता इसी प्रकार प्रेमानन्द में मग्न होने पर उस आनन्द का स्वरूप दूसरे को नहीं बता सकता। हाँ, जिस समय मनुष्य प्रेमानन्द में भर कर नृत्य करता है उस समय प्रेम का कुछ अंश लोगों को अवश्य दीखने लगता है। कारण प्रेमानन्द की प्राप्ति होने पर रोम-रोम से प्रेम की

किरणें प्रगट होने लगती हैं। नेत्र अश्रुओं से भर जाते हैं तथा कण्ठ भी रुक जाता है। कारण वाणी गद्गद् हो जांती है।

नयनं गलदश्रु धारया
वदनं गद्गद् रुद्धया गिरा
पुलकैर्निचितं वपुः कदा
तवनामग्रहणे भविष्यति

परमात्मा के नाम ग्रहण मात्र से ही प्रेमी की यह दशा हो जाती है। ऐसा प्रेम गुणातीत, कामना रहित एवं अनिर्वचनीय, प्रतिदिन बढने वाला होता है। इसका स्रोत कभी नहीं टूटता, हृदय की गुफा में रहने वाला यह प्रेम सूक्ष्माति सूक्ष्म होने से केवल अनुभव जन्य है। प्रेम पात्र की किसी वस्तु में अभिरुचि नहीं होती। जैसे स्वर्ग का ऐश्वर्य योग सिद्धि ब्रह्म पद आदि सबसे उसे उपराम रहता है। प्रेमी तो निज आनन्द मगन वासना रहित होता है। वह तो प्रेम बन्धन से मुक्त होना ही नहीं जानता।

वन्धनानि खलु सन्ति वहूनि
प्रेम रज्जु कृत बन्धन मन्यत्
दारु भेद निपुणोऽपि षडंघ्रि
निश्क्रियो भवति पंकज मध्ये

सभी बन्धनों में प्रेम रज्जु कृत बन्धन ही निराला है। देखिये, भ्रमर काष्ट भेदन में अत्यन्त निपुण है पर कमल के भेदन में सदैव असमर्थ रहता है। इस बन्धन में बँध कर प्रेमी अपने प्राणों की आहुति तक कर देता है।

प्रेम सदा मधुर है, अविनाशी है, सनातन है, सत्य है।

ऐसा प्रेम व्रज सीमन्तिनियों में ही पाया जाता है यह अलौकिक प्रेम है इस शुद्ध प्रेम से ही श्री कृष्णजी वशीभूत होते हैं।

श्री कृष्णस्तु प्रेमवतीनां वश्यः
न तु कामवतीनाम्

यह श्री कृष्णचन्द का स्वभाव है।

उष्णो रविःशीतल एव चन्द्रः
सर्वं सहाभूश्चपलाः समीरा
साधुः सुधीरम्बुनिधीः गम्भीराः
स्वभावतः प्रेमवशोहि कृष्णः

जिस प्रकार सूर्य में गरमी तथा चन्द्रमा में शीतलता, पृथ्वी में सहनशीलता, बिजली में चपलता एवं साधु में साधुता और समुद्र में गम्भीरता होना स्वाभाविक धर्म है। उसी प्रकार प्रेम के वशीभूत होना श्री कृष्णचन्द्र का स्वभाव है।

प्रेम राज्य में बड़ी कठिन समस्या आती हैं। सुख, दुःख, ईर्ष्या, क्रोध, मान, अपमान किन्तु प्रेमराज का पथिक सब कुछ सहता है वह अपने आनन्द में कभी रोता है कभी हँसता है उसे किसी की चिन्ता नहीं उसी प्रकार विरहिणी गोपियां रो-रोकर अचेत हो रही है उन्मादनी हो रही है भूख, प्यास खो चुकी है पर इसमें भी उनको कितना आनन्द है इस आनन्द पर तो शत सहस्र इन्द्र सुख भी न्योछावर है। तात्पर्य यह है कि प्रेमी प्रेमास्पद एक हृदय होने के कारण इस विरह दुःख में भी अतुलनीय सुख का अनुभव करता है।

जहाँ विशुद्ध प्रेम होता है वहाँ आचार, विचार, विहार, सुधार कुछ नहीं होता।

प्रेम राज्य में तो केवल प्रेमी का ही साम्राज्य है। उनके यहाँ कोई बन्धन नहीं है और यह भागवत शास्त्र भी प्रेम भक्ति से ही मिल सकता है। (भक्तया भागवतं शास्त्रं)

इस प्रेमा भक्ति रस को तो गोपियों ने ही पहचाना है। तभी तो श्यामसुन्दर ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां
स्व साधु कृत्यं विबुधायुषाऽपिवः।
या माभजन्दुर्जर गेह श्रृंखलाः
सवृश्च्य तद्वः प्रतियासु साधुना

गोपियो, तुमने घर की बड़ी बेड़ियों को तोड़ कर मेरी सेवा की है। तुम्हारे इस साधु कार्य का मैं देवताओं की सी आयु पाकर भी बदला नहीं चुका सकता। तुम ही मुझे अपनी-अपनी उदारता से उऋण कर सकती हो। ऐसे सम्बन्ध को कौन समझ सकता है।

प्रेम सम्बन्ध में एकादश आसक्ति होती हैं, इनके भक्त अलग-अलग हुए हैं।

जैसे गुण माहात्म्यासक्ति :—

नारद, वेदव्यास; शुकदेव, याज्ञबल्क्य, काकभुशुण्डि, शेष सूत, शौनक, शाण्डिल्य, भीष्म, अर्जुन, परीक्षित, पृथु, जनमेजय आदि।

जैसे रूपासक्त :—

मिथिला के नर नारी, राजा जनक, व्रज नारियां आदि।

जैसे पूजासक्त :—

लक्ष्मीजी, राजा पृथु, अम्बरीष, श्री भरतजी आदि।

जैसे स्मरणा सक्त :—

प्रह्लाद, ध्रुव, सनकादि।

जैसे दास्यासक्त :—

हनुमान, अक्रूर, विदुर।

यथा सख्यासक्त :—

अर्जुन, उद्धव, संजय, श्रीदामा, सुदामा आदि।

यथा कान्तासक्त :—

अष्ट पटरानियां।

यथा वात्सल्या सक्त :—

कश्यप, अदिति, सुतपा, पृश्नि, मनु, शतरूपा, दशरथ, कौशिल्या, नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी आदि।

यथा आत्म निवेदनासक्त :—

वलि, विभीषण, हनुमान, अम्बरीष, शिव आदि।

यथा तन्मयतासक्त :—

सुतीक्ष्ण, कोडिन्य, याज्ञवल्क, शुक सनकादिक।

यथा परम विरहासक्त :—

अर्जुन, उद्धव, व्रज के नर नारी।

यह है प्रेमोपासना की साधन प्रणाली।

प्रेम तत्व के आचार्यों ने इस प्रेम को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। इस प्रेमोपासना में व्रज के नर नारियों को ही सर्वश्रेष्ठ बताया है। जिनको नव रस मय व्रजराज का सान्निध्य मिला है। यथा नवरसः —

१. शृङ्गार २. वीभत्स ३. वीर ४. रौद्र ५. हास्य ६. भयानक ७. अद्भुत ८. करुणा ९. शान्ति।

इस श्लोक में नौ रस विद्यमान हैं। यथा ;—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः
स्त्रीणो स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां।
शास्ताः स्वपित्रो शिशुः॥
मृत्युर्भोजपते विराड् विदुषां
तत्वं परं योगिनाम्।
बृष्णीनां पर देवतेति विदितो
रंगं गतः साग्रजः।

श्री बलराम तथा श्री कृष्ण चन्द्र जिस समय कंसराज की रंगभूमि में गये थे। उस समय सबको अपनी-अपनी भावना से श्यामसुन्दर के दर्शन हो रहे हैं।

यथा—मल्लों को खड्ग के समान दीख रहे हैं। यहाँ 'रौद्र रस' है।

मनुष्यों को श्रेष्ट नरवर के रूप में दीख रहे हैं। यहाँ 'अद्भुत रस' है।

स्त्रीजनों को मूर्तिमान कामदेव के समान दीख रहे हैं। यहाँ 'शृङ्गार रस' है।

व्रजवासियों को स्वजन सरीके दीख रहे हैं। यहाँ 'हास्य रस' है।

खोटे राजाओं को आपका स्वरुप ऐसा दीख रहा है। मानो यह दण्ड देने वाले हैं। इसमें 'वीर रस' हैं।

अपने माता पिता को तो एक शिशु रूप में दीख रहे हैं। इसमें 'वात्सल्य रस' है तथा 'करुणा' भी है।

कंसराज को आपका स्वरूप मृत्यु रूप दीख रहा है। यह 'भयानक रस' है। मूर्खों को तो आपका विराट रूप दीख रहा है। यह वीभत्स्त रस है और योगीजनों को तो परमतत्व रूप में दीख रहे हैं। यहाँ 'शान्त रस' है। यादवों को तो आपका रूप पर देवता के समान दीख रहा है। यह प्रेम 'भक्ति रस' है। इसीलिए श्यामसुन्दर को नव रस मयो 'व्रजराजः कहते हैं।

अथ मुख्य रसाः

आचार्यों ने छै मुख्य रस बतलाये हैं।

यथा—शान्त, प्रीति, प्रेम, वत्सल, उज्वल, भक्ति यह छै रस हैं। इनमें भी रसराज भक्ति है। यही मधुर रस है और यही उज्वल है। व्रजराज रसमूर्ति है। अतएव रासमण्डल में भूषण हैं। हमारे सर्वेश्वर महा प्रभु ने रास नृत्य से सबको विमोहित कर दिया है।

इह सप्तमे वर्षे भगवता कार्तिकामावश्यायां कर्मवादो त्थापनेन इन्द्रमखभंग कृतः तच्छुक प्रतिपदि गोवर्धन महोत्सव :। द्वितीयायां यमुना तीरे भातृ द्वितीयाया महोत्सवः श्री शुकेन वर्णितेऽपिज्ञेयः। तत्रैव वर्णिता इन्द्र कोपोक्तयश्च। तृतीया मारभ्य नवमी पर्यन्तं गोवर्धन धारणं। दशम्यां गोपानां विष्मय कथा वाहुल्यम्। पौर्णमास्यां ब्रह्मलोक गमनम्। ततश्च शरद समाप्तत्वादष्टमे वर्षे सत्याश्विन पूर्णिमायां रासोत्सव।

जब यशोदा नन्दन सात वर्ष के थे। तब कार्तिक की अमावस के दिन इन्द्र का यज्ञ बन्द कर दिया। उसी समय इन्द्र की

कोपोक्ति हुई थी कारण आपने कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को गोवर्धन महोत्सव किया जो अन्नकूट नाम से प्रसिद्ध है। कार्तिक शुक्ला द्वितीया में यमुना तीर पर भ्रातृ द्वितीया का महोत्सव मनाया गया। देवराज इन्द्र इस महोत्सव को न सह सका उसने व्रज के नष्ट करने को मेघों के गण भेज दिये।

उस समय हमारे प्रभु ने कार्तिक शुक्ला तृतीया से कार्तिक शुक्ला नवमी पर्यन्त गिरिराज धारण किया। व्रज को आपने बचालिया। दशमी के दिन तो भगवान श्री कृष्ण के ऐश्वर्य को देख कर बड़ा विस्मय हुआ।

कार्तिक शुक्ला ११ के दिन तो इन्द्र ने आकर गोविन्दाभिषेक किया। उसी दिन गोविन्द कुण्ड का प्रागट्य हुआ है। इसमें आकाश गंगा के जल हैं तथा सुरभी का दूध है एवं भगवान श्री कृष्ण के चरणों का जल है इसलिए गोविन्द तथा गोविन्द कुण्ड का विशेष महात्म्य है।

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा में व्रजवासियों को बैकुण्ठ का दर्शन कराया है। जब यशोदा नन्दन आठ वर्ष के हुए तब आश्विन शुक्ला पूर्णिमा की शारदीय रात्रियों में रास महोत्सव मनाया था।

रास तो प्रत्येक पूर्णिमा में होता है। पर आश्विन मास की पूर्णिमा ही महारास की कहलाती है इसमें रासमण्डल की रचना कर सफेद वस्त्र धारण कराये तथा चांदी मोती हीरा आदि सफेद ही रत्नों के आभरण धारण कराये एवं सफेद वस्तुओं का नैवेद्य धरावे। उस दिन रास पंचाध्यायी का पाठ करे। इससे मन को पराभक्ति प्राप्त होती है। इससे श्री रासरासेश्वर भगवान श्री कृष्ण एवं रासरासेश्वरी श्री राधा भक्तों को मनोभिलिषित वरदान देती है।

रघुवरदयालु व्यास

श्रीरासपंचाध्यायी

प्रथमोऽध्याय

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥१॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥२॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनंच तत्कोमलगोभिरंजितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥३॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कांतो जवलोलकुण्डलाः॥४॥

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥५॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥६॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अंजन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥७॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्त्तन्त मोहिताः ॥८॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥९॥

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमंगलाः ॥१०॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

राजोवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१४॥

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥१५॥

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥१६॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः ।
अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥१७॥

श्री भगवानुवाच

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद्ब्रूतागमनकारणम् ॥१८॥

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१९॥

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

हृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररंजितम् ।
यमुनानिललीलैजत्तरूपल्लशोभितम् ॥२१॥

तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥२२॥

अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥२३॥

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥२४॥

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गुकृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥२६॥

श्रवणादर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।
विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥२८॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्-
बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥२९॥

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं
कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।
नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किञ्चित्
संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥३०॥

गोप्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥३१॥

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥३२॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥३३॥

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूला-
द्यामः कथंव्रजमथो करवाम किं वा ॥३४॥

सिंचांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककल गीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदबीं सखे ते ॥३५॥
यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमंग
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥३६॥
श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-
स्तद्वद्वयंच तव पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥
तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥
वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयंच भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणंच भवाम दास्यः ॥३९॥
का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्यसौभगामिदंच निरीक्ष्य रूपं
यद्गोद्विजद्रुममृगा; पुलकान्यबिभ्रन् ॥४०॥
व्यक्तं भवान् व्रजभयार्त्तिहरोऽभिजातो
देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्त्तबन्धो
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम् ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वर; ।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥४२॥

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टित; प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युत;
उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥४३॥

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथप; ।
मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥४४॥

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयांचकार ॥४६॥

एवं भगवतः कृष्णालब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥४७॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानंच केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥१॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥३॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।
नन्दसूनुर्गतो ह्रृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥५॥

कच्चित् कुरबकाशोकनागपुन्नाग चम्पकाः ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥६॥
कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रत् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥७॥
मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥८॥
चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥९॥
किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यंघ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद्वा
आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥१०॥
अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।
कान्तांगसंगकुचकुंकुमरंजितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥
बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं
किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥१२॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ।
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥
इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्युनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥१४॥
कस्याश्चित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यापिबत्स्तनम् ।
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहंछकटायतीम् ॥१५॥
दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यंघ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥१६॥
कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।
वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥१७॥
आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्वति ॥१८॥
कस्याश्चित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥१९॥
मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥२०॥
आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापरा नृप ।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥२१॥
तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ।
चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममंजसा ॥२२॥
बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ।
भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥२३॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥
पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥
तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्त्ताः समब्रुवन् ॥२६॥
कस्याः पदानि चैतानि यातायां नन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥२७॥
अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥२८॥
धन्या अहो ! अमी आल्यो गोविन्दांघ्रयब्जरेणवः ।
यान्ब्रह्मेशो रमा देवी दध्रुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥२९॥
तस्या अमूनि न क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् ।
यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुक्तेऽच्युताधरम् ॥३०॥
न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ।
खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥३१॥
इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥३२॥
अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ।
अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥३३॥
केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥३४॥

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।
कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणांचैव दुरात्मताम् ॥३५॥
इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ।
यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥३६॥
सा च मेने तदाऽऽत्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥३७॥
ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥३८॥
एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥३९॥
हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥४०॥
अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः ।
ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥४१॥
तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिंच माधवात् ।
अवमानंच दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥४२॥
ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ।
तमःप्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥४३॥
तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४४॥
पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥४५॥

इति द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥
विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥
न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥४॥
विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥
व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥
प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥
मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥
तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणञ्च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो नमः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥
चलसि यद् व्रजाच्चारयन्पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कांत गच्छति ॥११॥
दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमञ्च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥
सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥
अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटियुर्गायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च ते जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥१५॥
पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥
रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥
व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि यद् व्यथते न किस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमसि धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥

इति तृतीयोऽध्यायः

ज्योतिर्विद पौराणिक पं० पुरुषोत्तम देव व्यास

(श्री लल्लोजी महाराज)

जन्म तिथि : १०-१२-१८६६

निर्वाण दिवस : ६-६-१६४०

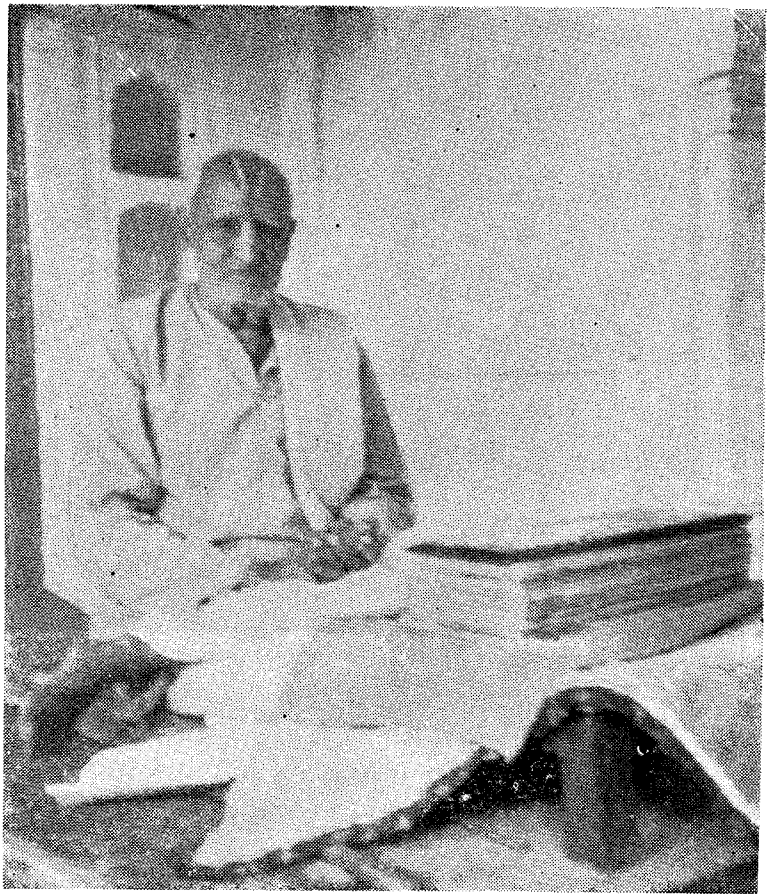

आचार्य पं० रघुवर दयालु व्यास

चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥
तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥२॥
तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ।
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥३॥
काचित्करांबुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ।
काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनरूषितम् ॥४॥
काचिदञ्जलिनागृह्णात्तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ।
एकालदंघ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥५॥
एका भ्रकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला ।
ऽनन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥६॥
अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ।
आपीतमपि नातृप्यत्सन्तस्तच्चरणं यथा ॥७॥
तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ।
पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥८॥
सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।
ह्यर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥९॥

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ।
व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥१०॥
ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ।
विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥
शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।
कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमांकितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥१३॥
तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।
चकास गोपीपरिषद्गतोर्चितस्त्रैयैलोक्यलक्ष्म्येकपदं बपुर्दधत् ॥१४॥
सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।
संस्पर्शनेनांककृताङ्घ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता वभाषिरे ॥१५॥

गोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हिते ।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१७॥
भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरौ यथा ।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदञ्च सुमध्यमाः ॥१८॥
भजतोऽपि न वै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः ।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रहः ॥१९॥

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून् भजाम्यमीषामनु वृत्ति वृत्तये ।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥२०॥
एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥२१॥
न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या मा भजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाःसंवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥२२॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥१॥
तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥२॥
रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥३॥
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥३॥
यं मन्येरन् नभस्तावद्विमानशतसङ्कुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥४॥
ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥५॥
वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनाञ्च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥६॥
तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥७॥
पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥८॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥९॥
काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता येन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानञ्च बह्वदात् ॥१०॥
काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥११॥
तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥१२॥
कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥
नृत्यन्ती गायती काचित्कूजन्नूपुरमेखला ।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात्स्तनयोः शिवम् ॥१४॥
गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥१५॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्म-
वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेश-
स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥१६॥

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥१७॥
तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा ।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलंव्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाःकुरूद्वह ॥१८॥

कृष्णविक्रीड़ितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ।
कामार्दिताः शशांकश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥१९॥
कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥२०॥
तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः ।
प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग ! पाणिना ॥२१॥
गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-
गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि
पुण्यानि तत्करुहस्पर्शप्रमोदाः ॥२२॥
ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-
घृष्टस्रजः स कुचकुङ्कुमरंजितायाः ।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः
श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥२३॥
सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो
रेमे स्वयं स्वरतिरत्न गजेन्द्रलीलः ॥२४॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।
चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मद्च्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥२५॥
एवं शशांकांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥

राजोवाच

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणांच साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥
नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥३१॥
ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥३२॥
कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ।
विपर्ययेण वानर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो ॥३३॥
किमुताखिलसत्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ।
ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः । ३४॥

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
स्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥३५॥

गोपीनां तत्पतीनांच सर्वेषामेव देहिनाम् ।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहिभाक् ॥३६॥
अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥३७॥
नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः॥३८॥
ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥३९॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदंच विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥४०॥

इति पंचमोऽध्यायः

श्री रास पंचाध्यायी

प्रथमोध्यायः प्रारम्भः

।। मंगलाचरणम् ।।

राधाकृष्ण पदार्चनैक निरतं
पुरुषोत्तमं गुरु वरम्
श्री निम्बार्क पदारविन्द युगलं
ध्यानास्पदं मंगलम् ।।१।।
ज्योतिर्वित्तिलकं पुराण पुरुषं
वेदान्त सूर्यं परम्
वन्देऽहं करुणा परं सहृदयं
मातामहं सर्वदा ।।२।।
श्री पुरुषोत्तम देवस्य प्रसादो रास संग्रहः
रसवर्द्धकप्रेमस्य नितरां जन संसदि
रासेश्वरस्य कृष्णस्य लीला यत्रप्रकीर्तिता
सा परापरमारम्या पंचाध्यायी विरच्यते ।।३।।

श्री राधाकृष्ण की सेवा में संलग्न चित्त तथा निम्बार्क महाप्रभु के चरण युगल के सेवक आचार्य श्री पुरुषोत्तम लाल जी व्यास मेरे मातामह एवं गुरुदेव के श्री चरणों में प्रणाम करके उन्हीं का प्रसाद रूप श्री रास रासेश्वर महाप्रभु की प्रणय रसवर्द्धनी रासलीला रास पंचाध्यायी का जिस प्रकार मैं कथा

में वर्णन करता रहा हूँ उसी को भावुकजनों की सेवा में अर्पण कर रहा हूँ।

सजयति सिन्दुर वदनो
देवोयत्पाद पंकज स्मरणं
वासर मणिरिव तमसां
राशिन्नाशय्यति विघ्नानाम् ॥४॥
ब्रह्मादि जय संरूढ
दर्पकन्दर्प दर्पहा
जयति श्रीपतिर्गोपी
रासमण्डल मण्डनः ॥५॥

आचार्य चरण श्रीधरस्वामी ने रास के आरम्भ में यह मंगला चरण किया है कि ब्रह्मादिक देवताओं को जीतने वाले अभिमानी कामदेव के घमण्ड को दूर करने वाले गोपी रास मण्डल के मण्डन शोभा सौन्दर्य स्वरूप श्रीपति रासरासेश्वर की जय हो जय हो। महारास यज्ञ की कथा प्रारम्भ करते हैं। यह भागवत की सार रूप कथा है :—

सर्ववेदान्तमुद्धृत्य क्षीरवार
धेरिवामृतं तच्छ्रीभागवत
शास्त्रं प्रोक्तं भगवता स्वयं ॥
तत्सारभूतं दशम स्कन्धं
प्राहुर्मनीषिणः ॥ तत्सारभूता
परमा पंचाध्यायी निगद्यते ॥६॥

जिस प्रकार क्षीरसागर का मन्थन करके अमृत निकाला है। उसी प्रकार मनीषि विद्वानों ने वेद वेदान्तों का सार रूप अमृत भागवत को निकाला है। और भागवत का भी सार दशम स्कन्ध है तथा दशम स्कन्ध का सार रास पंचाध्यायी है और इसका भी सार श्रीराधा जी का नाम है जो कि परम गोपनीय है भक्त जन कभी अपने गुरुजनों का नाम नहीं लेते। वह नाम तो सदा हृदय में ही निवास करता है। कदाचित् नाम निकल जाय तो भावना में विभोर होकर समाधिस्थ हो जाते हैं यही कारण है कि भागवत महापुराण में जहाँ सभी राधा सर्वेश्वर की ही लीला वर्णन करी है वहाँ श्री राधारानी का प्रगट नाम नहीं लिया। पाद्मे

राधानाम माद्रोण मूर्च्छा
षाण्माषिकी भवेत्
नोच्चारितमत:स्पष्टं
परीक्षित् हितकृन्मुनिः ॥७॥

महामुनि शुकदेवजी जब भाव विभोर होकर श्री राधे श्री राधे ऐसा कह देते तो उनकी छै मास की समाधि लग जाती थी। आज यदि रासयज्ञ के अन्तर्गत उनकी समाधि लग जाती तब परीक्षित महाराज को कौन कथा सुनाता। यह नाम तो भक्तों का परम धन है।

परम धन राधा नाम अधार
जाहि श्याम मुरली पै टेरत
सुमरत बारम्बार। परम०
तन्त्र मन्त्र और वेद यन्त्र में
सब तारन को तार। परम०

श्री शुकदेव प्रगट नहिं भाख्या
जानि सार को सार। परम०
कोटिक रूप धरे नन्द नन्दन
तऊ न पायो पार। परम०
व्यास दास अब प्रगट वखानत
डारि भार में भार।
परम धन राधा नाम अधार

यह नहीं समझना कि भागवत शास्त्र में राधा नाम नहीं है राधा नाम तो प्रत्येक अध्याय में आता है पर जगज्जननी सर्वेश्वरी राधा को कौन प्रत्यक्ष में पा सकता है। रास के प्रारम्भ में ही श्री राधा सर्वेश्वरी ने शुकदेवजी को समझा दिया था। कौशिक संहिता में लिखा है श्री शुकदेवजी राधा रानी से बोले :—

रासक्रीणां वर्णयितु
मुद्युक्तो वादरायणिः
समाधिस्थस्ततो राधां
प्रार्थयामास चेतसि
रासक्रीणां वर्णयेह
माज्ञामे दीयतां शिवे ॥८॥

मैं आपको रहस्यमयी लीला का वर्णन करता हूँ। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें। उस समय राधा जो कहती हैं :—

स्फुटं प्रोवाच श्री राधा
निःशंकं वर्णतामिति
मदीयं मत्सखीनां च
नामग्राह्यं न कुत्रचित् ॥९॥

आप मेरी लीलाओं का निःशंक होकर वर्णन करें पर मेरा तथा मेरी सखियों का स्पष्ट नाम न लेना। बताइये, इतनी बात होने पर फिर अपने आराध्य देव का कैसे नाम ले सकते। अस्तु, कितनी जगह नाम आता है यह तो आप आगे स्वयं पढ़ेंगे या सुनेंगे। राधा तो रास की सारभूता है।

राधा नाम तो मन ही मन में जपने का मन्त्र है (मन्त्रस्य सुलघूच्चार जप इत्यभिधीयते) मन्त्र के लघु उच्चारण को जप कहते हैं। आचार्य महाप्रभु कहते हैं।

रहस्यं श्रीराधेत्यखिल
निगमानामिह धनं
निगूढं मद्वाणी जपतु
सततं जातन परम् ।। ।।१०।।

अखिल शेष शास्त्रों का धन श्रीराधा नाम रहस्य है इसे किसी के सामने कहा नहीं जाता, मेरी वाणी निरन्तर इसी का जाप करती है और किसी का नहीं, तात्पर्य यह है कि यह नाम सर्वथा गोपनीय है। व्यास जी ने प्रारम्भ में ही राधाकृष्ण का ध्यान किया है। यथा :—

जन्माद्यस्य यतोन्वयादितरतः (अन्वयात्)

अनुगच्छति सदा परमानन्द रूपायां तस्यां राधायां आसक्तो भवतीत्यन्वयः। श्री कृष्णः यस्मात् (इतरतः) तस्या सदा द्वितीयाया श्री राधाया एव आद्यस्य आदि रसस्य जन्म प्रादुर्भावः।

निरन्तर परमानन्द रूपा राधा के पीछे चलने वाले श्रीकृष्ण इतरा दूसरी श्री राधा इनसे ही आदि रस का प्रादुर्भाव हुआ

है। ऐसे सत्य पर स्वरूप का हम ध्यान करते हैं। इस प्रकार अनेक स्थलों में श्री राधा का ही नाम सर्वत्र लिखा हुआ है। रास की सारभूता श्री राधा ही है। अतः प्रथम रास रासेश्वरी वृषभानु किशोरी श्री राधाजी को नमस्कार है।

वामेशारद चन्द्रकोटि मधुरां कैशोर कान्त्युज्वलाम्
कान्तां कामकलात्मकां कमलिनीं कारुण्यपूर्णेक्षणाम् ॥
सच्चित्प्रेम रसात्मकां रसमयीमाजानु दीर्घालिकां।
सेवेहं परमेश्वरीं भगवतीं बृन्दावनाधीश्वरीम् ॥११॥

रास पंचाध्यायी में पाँच अध्याय वर्णन करी हैं। कारण पाँच ही तत्व हैं। पाँच ही यज्ञ हैं। पांच ही देव है। पाँच ही पंच होते हैं तथा कामदेव के भी पाँच बाण हैं यथा—उच्चाटन-वशीकरण, मोहन, स्तम्भन, और विद्वेष इन पांचों के काटने के लिए ही पाँच अध्याय हैं।

रास—रस एव रासः जो रस से भरा हुआ है। रस्यत आश्वादिते रस के स्वाद लेने की वस्तु रास जिसमें आनन्द ही आनन्द है। जो बहुत सी नर्तकियों के साथ किया जाता है वह रास कहलाता है।

रास करने का प्रयोजन क्या है? कामी कामदेव के गर्व को दूर करना जिसको ब्रह्मादिक के जीतने का गर्व था।

ब्रह्माजी एक समय अपनी सुन्दरी पुत्री को देख कर मोहित हो गये थे। यह काम की विजय। शंकरजी मोहिनी स्वरूप को देख कर मोहित हो गये। यह भी काम की विजय। देवराज इन्द्र गौतम की पत्नी को देख कर मोहित हो गये। यह काम की विजय। इस प्रकार बड़े-बड़े लोकपालों को जीत कर कामदेव का गर्व बढ़ गया था। घमण्ड से भरपूर कामदेव अपने को

त्रिलोक विजयी समझता था। एक दिन वह अभिमानी अपने बल पर फूला अपनी भुजाओं को फटकारता घूम रहा था। उसको अचानक देवर्षि नारद मिल गये। उनको देख कर बोला—नारद जी आप तो संसार में भ्रमण करते हो बताओ कोई मेरे बराबर संसार में योद्धा है जो मुझसे युद्ध कर सके। नारद जी ने कहा—कामदेव ऐसा योद्धा तो अब एक ही रहा है जो तुम्हारा सामना कर सके। वह वृन्दावन में रहता है। कामदेव बोला अच्छा तो आप उसका पूरा नाम गाँव तथा उसके काम बताइये।

नारद जी ने कहा—कामदेव वह वृन्दावन का राजा है। उस किले में सहसा कोई प्रवेश नहीं कर सकता वह शुद्ध सत्व की खाइयों से घिरा हुआ है, उसका परकोटा वृक्षलता झाड़ियों से सुदृढ़ है। वहाँ चार बुर्ज हैं। ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। यह बाहर के बुर्ज हैं। भीतर अठारह पुराण रूपी अठारह बुर्ज हैं। वहाँ का राजा नन्दकिशोर है और रानी भी लाढ़ली जी है। वहाँ गीता कोतवाल है और हरिभक्त वहाँ के सैनिक हैं जिनके पास शास्त्र रूपी शस्त्रास्त्र हैं। वहाँ कोई नास्तिक प्रवेश नहीं कर सकता कारण वह वैष्णव गोलन्दाज शास्त्र रूपी जो गोलाओं की वर्षा करके शत्रुओं को मार भगाते हैं। वहाँ की प्रजा कृष्ण प्रेमातुरी है। साधु भक्ति रूपा नाम के वहाँ दरवाजे हैं। जिनसे पुण्यात्मा ही प्रवेश कर सकते हैं पापियों को तो धक्का देकर बाहर निकाल दिया जाता है।

यह सुनकर कामदेव बोला—नारद जी अब मैं समझ गया। उस वृन्दावन के राजा को ही देखना है। कामदेव अपनी सेना को सुसज्जित करके अपने मित्र वसन्त एवं मलयाचल का पवन आदि के साथ चल दिया।

सायंकाल का समय था वृन्दावन पहुंच कर वहाँ का सघन वन देखा एवं सामने से आते हुए नन्दकिशोर को भी देखा जो कि गायों के साथ आ रहे हैं। उनके सौन्दर्य को देख कर कामदेव स्वयं मोहित हो गया। कुछ समय टकटकी लगा कर देखता ही रहा।

आगे गाय पीछें गाय
इत गाय उत गाय ।
गोविन्द कों गायन में
वसवोई भावेरी ।।
गायन के संग धावे गायन में सुख पावे
गायन के काज गिरि करते उठायो री ।
छीत स्वामी गिरधरन विट्ठलेश वपुधारी
ग्वारिया को वेश धरे गायन में आवेरी ।।
गोविन्द कों गायन में
वसवोई भावेरी

कामदेव तो उस माधुरी छवि को देख स्वयं आकुल हो उठा तथापि सावधान होकर उनके सामने आकर उनसे बोला—भाई ! तेरा क्या नाम है श्रीनन्दकिशोर ने कहा, भैया मेरा तो दो अक्षर का नाम है 'कृष्ण' पर मुझसे नन्दकिशोर कहते हैं और भाई तुम्हारा क्या नाम है। कामदेव बोला-मेरा नाम जगद्विजयी मकरध्वज कामदेव । श्री कृष्णजी ने कहा-भाई तुम्हारा नाम तो बहुत बड़ा है। कामदेव ने कहा—ठीक है मैं तुमसे ही युद्ध करने आया हूँ (श्रीकृष्ण अच्छा भैया, तो बता कैसा युद्ध करेगा। मैदान का या किलेबन्दी का। कामदेव

बोला, मैं यह नहीं जानता मैदान की लड़ाई कैसी होती है और किलेबन्दी की लड़ाई कैसी होती है।

तब श्रीकृष्ण चन्द्र ने उसको बताया देख—किले की लड़ाई तो वह है कि मैं समाधि लगा कर बैठ जाऊँ और तू अपने हथियारों से मेरे मन को विचलित कर और भाई, मैदान की लड़ाई वह है कि मैं हजारों गोपियों के साथ रास नृत्य गान करूँ। उस समय तू अपने हथियारों से मेरे मन को चलायमान कर यदि मेरा मन उस समय के नाच, गान तथा वाद्य से विचलित हो जाय तो तेरी विजय अन्यथा मेरी विजय यह है मैदान की लड़ाई। कामदेव ने सोचा, यह मैदान का युद्ध ही ठीक रहेगा। इसमें तो मैं इसको परास्त कर दूँगा। कामदेव ने कहा—कृष्ण, मैं मैदान का युद्ध करूँगा।

श्री कृष्ण—अच्छा, तो तू आगामी शरद् ऋतु की रात्रि में आ जाना उसमें मैं रासयज्ञ करूँगा। वहाँ सब स्त्रियाँ ही रहेंगी पुरुष तो मैं अकेला रहूँगा उस समय आना। यह है रासलीला करने का प्रयोजन, उस अभिमानी कामदेव के मान का मर्दन करना। यह निवृत्ति परा लीला है जहाँ शुद्ध प्रेम का ही साम्राज्य है। श्री कृष्णः प्रेमवतीनांवश्यः न तु कामवतीनां विशुद्ध प्रेम सदा बढ़ता है। साधारण प्राकृतिक प्रेम घट जाता है तथा कालान्तर में नष्ट हो जाता है।

श्री शुक उवाच—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः
वीक्षरन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥१२॥

श्री शुकदेव जी बोले—

जहाँ शरद् कालीन मल्लिका चमेली खिल रही है उन

दिव्य रात्रियों को देख कर व्रज देवियाँ रमण करने की इच्छा करने लगी। उसी समय भगवान भी रमण करने की इच्छा करने लगे।

भगवान षडैश्वर्य सम्पन्न को ही कहते हैं—यहाँ अन्य नाम जैसे वृन्दावन बिहारी, रसिक बिहारी, माधव, मुकुन्द, मधुसूदन मनमोहन आदि रसलीला माधुर्य सम्पन्न नामों की आवश्यकता न समझ कर षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान नाम ही शुकदेव जी ने लिया है। कारण इस नाम की ही शक्ति है जो करोड़ यूथ गोपियों में भी योगेश्वर बनने में समर्थ है तथापि परात्पर भगवान ने योगमाया का सहारा लिया है। यह आपकी आह्लादिनी शक्ति राधा है।

योऽयं भगवान यामुपाश्रित सन् रन्तुं मनश्चक्रे सा अगमा दुर्गमा (गोबिन्दप्रियवर्ग दुर्गम सखी वृन्दैः समालक्षितेति सुधा-निधे) दुर्गमा यमादि साधनै र्यम नियम आसन प्राण संरोध प्रत्या-हार, ध्यान धारणा, समाधि लक्षणानि साधननि तैरपि दुर्गमा सा राधा योगमायामुपाश्रितः यहाँ राधारानी का स्पष्टनाम दीख रहा है। बिना राधा के रासलीला कैसे हो सकती है इसलिये (स्वाश्रिता मपि तांमाश्रित्य) अत्र वृन्दावनेश्वरीमना-श्रित्य रासोत्सवं कथं स्यात् (योगमायां स्त्रीयांमचिन्त्य चिच्छक्ति मतीमुपगम्य आधिक्येन आश्रित्य इति।

यहाँ योगमाया नाम वंशी का भी है वह भी रासरासेश्वर को सबसे अधिक प्यारी लगती है। उसका भी आपने सहारा लिया है यथा-महारुद्रस्तुवंशिका इति युक्तमेव कामदर्पदलनायतदा श्रयणम्॥ कामदेव के दर्प दमन करने के लिए आपको महारुद्र वंशिका का आश्रय लेना पड़ा। इसमें एक और भी रहस्य

छिपा हुआ है। महा रुद्रावतार श्री हनुमान जी हैं उनकी साक्षी में ही रास सम्भव है। इस महारास में साक्षी होना आवश्यक है। जिससे आपको योगेश्वर की उपाधि मिल सके।

एक समय रामजी ने भरत जी से पूछा—भैया, एक बात बताओ मैं हनुमान के ऋण से कैसे उरण हो सकता हूँ। भरत जी ने कहा—रामजी, जैसे हनुमान ने आपकी सेवा की है उसी प्रकार आप हनुमान की सेवा करें, राम के प्यारे हनुमान रुद्रांश वंशी के रूप में प्रगट हुए हैं यहाँ श्रीकृष्ण की सबसे प्यारी वस्तु वंशी रही है। उसी वंशी की श्रीकृष्ण ने सेवा की है महारुद्रस्तुवंशिका--श्री कृष्ण के साथ वंशी सदा रहती थी। राधारानी ने भी रास में आने की स्वीकृति जब दी कि रास में ब्रह्मचारी ही साक्षी होना चाहिए। यही कारण है कि योगमाया वंशी का आश्रय लेकर ही रास आरम्भ किया है यहाँ कोई शंका करता है श्यामसुन्दर बालक थे। उत्तर—बाल्येऽपि भगवान कृष्ण कैशोरं रूप माश्रितः इतिन्यायात्) आपने बाल्यावस्था में ही कैशोर रूप धारण कर लिया है।

ततोडुराजककुभः करैर्मुखं
प्राच्याविलिम्पन्नरुणेनशन्तमैः
सच्चर्षणीनामुदगाच्छुचोमृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घ दर्शनः ॥१३॥

जिस समय रास रासेश्वर भगवान रास क्रीड़ा करने का विचार करने लगे। उसी समय चन्द्रोदय हुआ। वह अपनी सुखकारी लाल किरणों से नायिका स्वरूप पूर्व दिशा का मुख मण्डन कर रहा है ऐसा प्रतीत होने लगा। चन्द्रोदय के होने से खितहारे किसानों का दिनभर का परिश्रम दूर हो जाता

है। आज उस चन्द्रमा को देख कर तथा रात्रि की शोभा देख कर प्रभु ने उन ब्रज देवियों को बुलाने के लिए उस मनोहर गान का आरम्भ किया।

एक दिन श्याम सुन्दर सायंकाल के समय यमुना तट वंशीवट पर एक कदम्ब के नीचे उसकी सुशीतल छाया में अपना पटका बिछा कर बैठे थे। उस समय आपके पास तीन बंशियाँ रक्खी थी। एक का नाम नन्दिनी था और एक का नाम मोहिनी था तथा एक का नाम आकर्षणी था। आज आपने मोहिनी बंशी को उठाया और उससे बड़ें प्यार से बोले—अरी मोहिनी! तू कभी मेरे किसी काम में नहीं आती है। और मुझे देख, मैं तेरी सदा सेवा करता हूँ। तुझे हर समय अपने होठों पर रखता हूँ तेरे चरणों को दबाता हूँ पर तू बड़ी कठोर है जो कभी मेरे काम में नहीं आती।

शयाना हस्ताब्जे मृदुलमपधायाधरदलं,
हरे मंन्दा दोला लक ततिभिरावीजित तनुः।
दधाना सा शंकांगुलिभि संवाहन विधि,
स्तथाप्येषा वंशी नहि भजति सामत्र सुकुला॥ ॥१४॥

भगवान की इस वाणी को सुन कर वंशी ने कहा—नाथ, आप ऐसा पछतावा क्यों कर रहे हो। मुझे कोई काम तो बताइये। मैंने तो आपके किसी कार्य में विरोध नहीं किया। नाथ, मैं तो आपकी दासी हूँ। तब भगवान ने कहा—अच्छा. तो आज सब ब्रज नागरियों को मेरे पास बुला ला। वंशी ने कहा, बस प्रभु इतने से काम को और इतनी बड़ी भूमिका बना रहे हो। मैं अभी जिनको आप कहो उनको बुलाती हूँ।

श्री रास रासेश्वर ने विचार किया कि पहिले रास रासेश्वरी राधा को ही बुलाना चाहिये अन्यथा वह कहीं मान करके बैठ गई तब यह उत्सव न हो सकेगा। इसलिये प्रभु ने प्रथम वृषभान किशोरी को ही टेर लगाई।

हे राधे वृषभानभूपतनये
हे पूर्ण चन्द्रानने।
हे कान्ते कमनीय कोकिलरवे
वृन्दावनाधीश्वरी।
हे मत्प्राण परायणे च सुभगे
हे सर्वयूथेश्वरी।
आगत्यंत्वरितं त्वमत्रविपने
मां दीन मां नन्दय॥ ॥१५॥

कितने मान के साथ मधुर वचनों से राज राजेश्वरी को बुलाया है। हे दीनों को आनन्द देने वाली नारदादि ऋषि वन्दिता देवी राधे शीघ्र पधारो जल्दी आओ। फिर आपने अन्य सभी व्रजाङ्गनाओं को बुलाया है।

हे श्यामे सुभगे स्वभाव चपले चित्रे विशाखे प्रिये।
हे चन्द्रावलि श्यामले चललिते हे तुंगभद्रे रमे।
हे भद्रे सुखदे च चम्पकलते, हे स्वर्णरेखे स्वभे।
अन्याया ममवल्लभा व्रजपुरेतास्तूर्णमागच्छत। ॥१६॥

इस प्रकार सबके नाम ले लेकर श्याम सुन्दर ने उनको बुलाया है। बंशी बजा कर उन व्रजकिशोरियों के मन को अपनी ओर खींच लिया। आपने उनको इस प्रकार क्यों लुभाया इसका तात्पर्य यह था कि उन देवियों के मन का हरण करना उनके मनको वहाँ से हटाना था कारण

यह कामदेव मनोज कहलाता है अर्थात् मनका पुत्र। सर्वेश्वर भगवान ने विचारा कि गोपियों का मन यदि गोपियों के पास रहेगा तब कामदेव उनके अंग प्रत्यंग में प्रवेश न कर सकेगा। कारण पिता मन के रहते वह उन अङ्गों में कैसे प्रवेश कर सकता है। और यदि वह उनके अङ्गों में नहीं बैठता है तो भगवान की दृष्टि में वह कमजोर रहता है। एक निर्बल शत्रु से लड़ना भी उपहास मात्र होगा राहु जो दैत्य है वह भी पूर्ण चन्द्र पर पूर्णिमा में ही आक्रमण करता है। उसकी दुर्बल अवस्था में अमावश पर कभी आक्रमण नहीं करता जब असुर भी इस नीति को जानते हैं फिर हमारे सरकार कैसे एक दुर्बल से युद्ध करते। इसलिये आपने कामदेव को पुष्ट करने के लिए ही वंशी नाद करके व्रजकुमारियों का मन हरण किया है। यही वेणुनाद करने का प्रयोजन है --

निशम्य गीतं तदनंग वर्द्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः
आजग्मुरन्योन्यमलक्षतो द्यमाः
स यत्र कान्तो जब लोल कुण्डलाः ॥१७॥

उस वंशी के मधुर गीत को सुन कर वह गीत अनंगवर्धन था प्रेम के बढ़ाने वाला। अनंग काम को भी कहते हैं। अनंग प्रेम को भी कहते हैं। अनंग प्रद्युम्न को भी कहते हैं यह प्रेम के बढ़ाने वाला है एवं काम के तो काटने वाला है। इस प्रकार के प्रेम गीत को सुन कर वह व्रज की ललना जो कि चार प्रकार से प्रसिद्ध थी। श्रुतिरूपा, ऋषि रूपा, देव कन्या, गोपकन्या थी यह मानवी नहीं थीं।

गोप्यस्तु श्रुतयः प्रोक्ता ऋषिजा गोपकन्यकाः।
देव कन्याश्च राजेन्द्र-न मानुष्यः कथंचनः। ॥१८॥

साधारण स्त्रियों को तो वह बेणु गीत सुनाई भी नहीं दे सकता।

यह साधन सिद्धाओं को ही सुनाई पड़ सकता है। इन्हीं देवियों का मन परमात्मा ने हरण कर लिया था। एक और आश्चर्य की बात कि ॥अन्योन्यमलक्षितो द्यमाः॥ ब्रजकिशोरी गण जब अपने कान्त के पास चली हैं उस समय उनका कैसा तन्मय भाव था कि वह एक दूसरे को न जान सकी। सबको यह आभास हो रहा है कि श्याम सुन्दर ने मुझे बुलाया है। ललिता जी समझ रही हैं प्रभु ने आज मुझे बुलाया है तथा विशाखा जी समझ रही हैं मैं ही श्याम सुन्दर के पास जा रही हूँ। आज मुझे ही बुलाया है। जहाँ अनन्त कोटि गोपियाँ जा रही हैं वहाँ सब अपना-अपना ही सौभाग्य समझ रही हैं। यह तन्मय अवस्था है। तन्मय अवस्था में ऐसा ही हो जाता है।

एक समय श्री राधाकृष्ण व्रजदेवियों के साथ निकुंज में बैठे थे उस समय एक भ्रमर बार-बार आकर प्रियाजी के मुख मण्डल पर भमराने लगा कारण आज श्री राधा जी कमल पुष्पों के कुण्डल धारण कर रही थी। वह गन्ध का लोभी भौंरा उनको आज बड़ा कष्ट दे रहा है। राधाजी की सखियाँ उसे अपने चमर एवं व्यजन पंखाओं से उसको निकुंज से बाहर निकाल देती हैं पर वह नहीं रुका। उस समय एक सखा उस भ्रमर को अपनी छड़ी से मारता बहुत दूर ले गया। तब कहीं शान्ति मिली इस खुशी में एक सखि ने आकर कहा, राधे मधुसूदन गये। मधुसूदन भौंरा से भी कहते हैं और मधुसूदन भगवान का भी नाम है राधाजी को कैसी भ्रान्ति हुई कि श्याम सुन्दर निकुंज से चले गये। वह तो एकदम व्याकुल हो गई और कहने लगीं।

क्व नन्द कुल चन्द्रमा क्व शिखि चन्द्रिकालंकृतिः
क्व मन्द मुरली रवः क्व नु सुरेन्द्र नीलद्युतिः

क्व रास रसताण्डवी क्व सखिजीव रक्षौषधि
विधिर्मम सुहृत्तम क्व हन्त हा धिक् विधिः ॥१६॥

नन्द कुल चन्द्रमा आप कहाँ चले गये। हे मयूर चन्द्रिका से अलंकृत आप कहाँ हो। मनोहर मुरली बजाने वाले आप कहाँ हो। हे रास सर्वेश्वर सखियों की जीवन रक्षा औषधि आप कहाँ हो ? हे सुहृत्तम यह विधाता ऐसा वियोग क्यों करा देते हैं। विधाता तुमको धिक्कार है।

यह राधाजी का तन्मय भाव है। जबकि पास में परात्पर भगवान बैठे हैं पर इतनी सुनकर कि मधुसूदन गये। आपकी क्या दशा हो रही है आपको अब कुछ नहीं दीख रहा। श्री कृष्ण भी उनको समझा रहे हैं पर उनका तो यह वियोग जन्य दुःख बढ़ता ही जा रहा है। गोपियाँ भी व्याकुल हो रही हैं। यह क्या हो गया ? श्री राधा वह दुःखी हृदय राधा कृष्ण चन्द्र के विरह में वह वियोगिनी राधा, वह भक्ति रस तरंगिणी राधा, वह श्री कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति राधा, वह सर्वेश्वरी राधा दुखित हो विष कुन्ड की ओर चल दी मैं श्रीकृष्ण के बिना अपने प्राण त्याग दूँगी। जैसे ही विष कुण्ड में कूदने लगी। उसी समय श्रीकृष्ण चन्द्र ने अपने दोनों हस्तकमल उनके पकड़ने को कन्धा पर रख दिये। श्यामसुन्दर की हाथ की काली-काली पाँच-पाँच उँगलियों को देख कर कहने लगीं मुझे सर्पों ने पकड़ लिया है। और वह सर्प भी पाँच-पाँच फन के हैं। प्रभु की उँगलियों में जो मणिमय मुद्रिका प्रकाश कर रही थी। उनको देख कर कहने लगीं कि यह सर्प भी मणिधर मालूम पड़ते हैं। पर इनका स्पर्श मुझे इतना प्यारा क्यों लग रहा है। उसी समय एक चतुरा नाम की सखि इस सब रहस्य को

समझ कर कहने लगी राधे राधे मधुसूदन आ गये। बस, इतना सुनते ही राधा जी की सब वेदना समाप्त हो गई। और श्याम सुन्दर से मिलने लगी। यह तन्मय अवस्था थी। ऐसी ही दशा यहाँ वंशी की ध्वनि सुन कर आज गोपियों की हुई है। अलक्षितोद्यमा। किसी को यह ज्ञान नहीं हुआ कि हमारे साथ और भी कोई गोपियाँ चल रही हैं।

इन देवियों के वेग से आने के कारण कानों के कुण्डल भी हिल रहे हैं मानो वह आनन्द में झूम रहे हैं। यह व्रज सुन्दरियाँ श्री कृष्ण के पास आई। श्री शुकदेव जी ने ऐसा नहीं कहा कि श्री कृष्ण के पास गई। इसका कारण यह था कि श्री शुकदेवजी को यह सब लीला दीख रही है। प्रत्यक्ष श्री कृष्ण के आपको दर्शन हो रहे हैं।

इसी प्रकार रामजन्म के समय भी आपको श्री रामजी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे।

तस्यापिभगवानेष

साक्षाद्ब्रह्म मयो हरि ॥२०॥

राजा परीक्षित से जब वंशावली वर्णन कर रहे थे उसमें रघुवंश के वर्णन करते समय कहा था कि दशरथ महाराज के एष यह बालक उत्पन्न हुआ। उस समय प्रत्यक्ष श्री रामजी के दर्शन हो रहे थे। कथा प्रसंग यह चल रहा है कि गोपियाँ मुरली की ध्वनि सुन कर अपने कान्त के समीप में आ गई।

दुहन्त्योभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः।

पयोधिश्रित्यसंयावमनुद्वास्या परायुः ॥२१॥

यह गोपियों का प्रस्थान है। उन्होंने आज श्री कृष्ण प्रेम रसामृत पान करने की इच्छा से अपने ऐहिक एवं पारलौकिक सुख के सभी कार्य त्याग दिये।

सायंकाल का समय था। एक गोपी गाय दुहाय रही थी। मुरली के शब्द को सुन कर, पटक कर दोहिनी और मार कोहनी अब किसी की नहीं सुनूंगी नाम जाको रोहिनी वह श्याम रूप की वोहनी करने को चल दीनी।

एक गोपी सायंकाल के समय गायों को दरिया रांध रही थी। उसने जैसे ही मुरली की ध्वनि सुनी कि वह पटक कर दरिया और फोड़कर हड़िया कारी कमरिया बारे समरिया के दर्शन को चल दीनी।

परिवेशयन्त्यस्तद्धित्वा
पाययन्त्यः शिशून्पयः ॥२२॥
शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चित्
अश्नन्त्यो पास्यभोजनम् ॥२३॥

एक गोपी अपने पति की सेवा में लग रही थी। अपने पति को भोजन करा रही थी। उसके कानों में श्यामसुन्दर की मुरली की ध्वनि एकदम बरछी सी लगी। वह सेवा शुश्रूषा त्याग कर अपने सच्चे कान्त श्री कृष्ण के दर्शन को चल दीनी। यह वन्धवादि त्याग है।

काहु करत रसोई त्यागी
कोई पति हि जिमावत भागी
बालक गोद सम्भारन लीनो
दूध पिवावत ही तज दीनो

कोई ब्रजाङ्गना अपने बालक को दूध पिला रही थी। उस वंशी की मधुर ध्वनि को सुन कर फेंक कर कटोरी, रूप की चखोरी, गोदी से उतार पूत, वंशी जाकी अवधूत श्री कृष्ण के दर्शन को चल दीनी। एक गोपी भोजन कर रही थी। उसने जो साँवरे की वंशी सुनी। वह बेहाल हो गई। मुख का ग्रास मुख में और हाथ का ग्रास हाथ में रहा। वह तो फेंक कर थारी और फोड़ कर झारी, पहर रेशमी पीताम्बर सारी लगो जिसमें गोटा किनारी, नाम जाको कृष्ण प्यारी, वह वनवारी मुरारी, उस गिरधारी के दर्शनों को पधारी। यह दैहिक त्याग है।

कोई कहता है इनके सन्तान थी। तब उसका उत्तर तो यह है कि (न जातु व्रज देवीनां पतिभिः सह संगमः।)

इन देवियों का पतियों के साथ संगम भी नहीं हुआ। बालक तो जेठ देवरों के थे। यह गोपियाँ तो श्रुति रूपा, ऋषि रूपा थीं। भगवत्सेवा के लिए ही पधारी हैं। कोई शङ्का करता है। गोपियाँ जूठे मुँह चल दीं। (अश्नन्त्यो पास्य भोजनम्) इसका समाधान तो यह है कि प्रेम में आचार-विचार नहीं देखा जाता।

प्रेम्णो विचित्रा परिपाप्युरीरिता

प्रेम कें न जातपांत
प्रेम कें न रात दिन
प्रेम कें न जन्त्र मन्त्र
प्रेम कें न नेम है
प्रेम कें न रंग रूप
प्रेम कें न रंक भूप

प्रेम कें तो यही नेम
लोह और हेम है
प्रेम कें न सुख दुःख
प्रेम कें न हानि लाभ
प्रेम कें न जीव
ताते तीनों काल क्षेम हैं
देवी दास देखहु
विचार चार युगन मांहि
राखो यह पूरन प्रकाश मान प्रेम है ॥

प्रेम की बड़ी विचित्र गति होती है। उसका जानना कठिन है। देखिये ब्रह्माजी भी इस प्रेम की गति को नहीं समझ सके। जबकि बाल कृष्णलाल जी बाल भोजन मण्डली में बैठे थे। सभी शिशुगण अपनी-अपनी सामिग्री श्याम सुन्दर को दिखा रहे थे। भैया, देख मेरी माता ने यह मिठाई बनाई हैं। श्री दाम कह रहा है। कृष्ण मेरी माता ने मेवावाटी बनाई है और सुबल कह रहा है मेरी माता ने गुजिया बनाई है। भगवान सभी मित्रों की सामिग्री चाख रहे हैं उस समय प्रभु का हास्य सखा मधु मंगल कहता है अरे कृष्ण तू तो अपनी मिठाई चखा, तेरी माता ने क्या बनाया है। उस समय भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने एक लड्डुआ निकाल कर मधुमंगल को दिखाया। भैया मेरी माता ने लड्डुआ बनाये हैं।

भैया मोहे लड्डुआ ही लड्डुआ भावें
नुकती के नहि बेशन के नहि
माखन के रुचि आवें। भैया०

माखन भी सुरभी को भावे
कजरी देख रिसावे । भैया०
मुक्ता कामरी मेरी गैया
दूध की धार बहावें । भैया०
या लड़ुआ कों देख मंगला
तेरो जी भर आवें । भैया०

गोपाल कृष्ण ने एक लड्डू निकाल कर मधुमंगल को दिखाया। उसी समय मंगला ने हाथ बढ़ाया। पर प्रभू उस मोदक को स्वयं अरोग गये। उस समय मधु मंगल को बड़ा क्षोभ हुआ। उसने भी एक मोदक अपने पात्र में से निकाला और बोला कन्हैया देख यह मखाने का लड्डू है। भगवान ने लेने को हाथ बढ़ाया। पर मधुमंगल स्वयं उसे खा गया और प्रभु को सींग दिखाने लगा। मित्र का यह परिहास भगवान न सह सके और उसकी छाती पर चढ़कर उसके मुँह का लड्डू निकाल कर स्वयं खा गये।

सर्वेमिथो दर्शयन्त्यः स्वस्व भोज्य रुचि पृथक्।

इस लीला को देख कर ब्रह्मा जी भी आश्चर्य में पड़ गये। वह इस प्रेम की लीला को क्या समझें। वह तो कह रहे हैं यह ईश्वर कैसा है। बालकों की जूठन खा रहा है। प्रेम में आचार-विचार नहीं होता (अत्र तु अनाचार एव आचार) और भी सुनिये माता यशोदा जब अपने नीलमणि को दूध पिलाती थी। उस समय गरम दूध को देख कर प्रभू कहते थे। माता दूध अभी गरम है तू पीकर देख ले उस समय वह स्नेहमयी माता यां ब्रज देवियाँ एक घूँट लेकर देखती थी तब प्रभु उसको पीते थे।

कृष्णं सतृष्णमत्युष्णं
पायं पायं मुहु र्मुहु
लीला मुग्धं पाययन्त्यो
दुग्धं सप्रेम गोपिका ॥२४॥

यहाँ आप कहेंगे श्री कृष्ण जूठा दूध पीते थे यां गोपियां उन को जूठा दूध पिलाती थीं। यह बात नहीं है। यह प्रेम की लीला है और भी सुनिये

कदा विम्वोष्ठि ताम्वूल
मया तव मुखाम्वुजे
अर्प्यमाण व्रजाधीश
सूनु राच्छिद्य भोक्षते ॥२५॥

ललिता जी कहती हैं। हे विम्वोष्ठि राधे वह दिन कब होगा। जब मैं पान की बीड़ी आपको अर्पण करुँगी और श्याम सुन्दर आपके व्रजाधीश आपके मुख की बीड़ी को स्वयं पान करेंगे। यहाँ क्या कोई विचार की बात कह सकता है यह तो प्रेम की लीला है।

रामावतार के समय जब श्री रामजी मतंग मुनि के आश्रम में पहुंचे थे। वहाँ एक परम भक्तिमति शबरी भीलनी रहती थी। वह सदा रामजी के दर्शनों की लालसा करती थी। उसने रामागमन की कामना से बड़ी तैयारी की थी। रामजी आयेंगे वह प्रतिदिन मार्ग का शोधन किया करती थी।

मैं कर रही रस्ता साफ
आज मेरे रघुवर आयेंगे

रामजी को शुद्ध मीठे फल इकट्ठे किया करती थी। किस वृक्ष का फल मीठा है। इस प्रकार चाख कर, परीक्षा करके अपनी डलिया में सजाती थी। एक दिन श्री रघुनाथजी उसके आश्रम में पधारे। उस शबरी ने रामजी को चार फल अर्पण किये श्री रामजी ने भी प्रेम के दिये उन फलों का प्रसाद पाया :—

प्रेम्णा विशिष्ट मुच्छिष्टं भुक्ता फल चतुष्टयं,
कृता रामेण भक्तानां शबरी कवरी मणिः ॥२६॥

प्रेम से चाख कर मीठे-मीठे फल शबरी द्वारा जब रामभद्र को दिये गये। उस समय श्री रामजी ने शबरी भीलनी को भक्तों की चूड़ामणि बना दिया। इस प्रकार सर्वात्मा भगवान अपने भक्तों के वशीभूत हैं। प्रेम राज्य में यह सब आचार-विचार नहीं चलता। आज किशोरीगण श्री कृष्ण मुख निर्गत वेणु पीयूष का पान करती, जूठे ही मुख आ रही हैं। यहां कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये।

शबरी के फलों के विषय में पद्म पुराण में भी लिखा है।

फलानि च सुपक्वानि
मूलानि मधुरानि च
स्वयमाश्वाद्य माधुर्यं
परीक्ष परिभक्ष च ॥२७॥
पश्चान्निवेदयामास
राघवाभ्यां दृढव्रता
फलान्यास्वाद्य काकुत्थ
तस्यै मुक्ति परां ददौ ॥२८॥

रामायणों में तो कहीं झूठे फल का प्रसंग देखने में नहीं आता। जैसे वाल्मीक तथा तुलसीकृत। भक्तों की लीला सब रहस्यमयी होती हैं।

एक भक्त तो अपने प्रवचन में ऐसा कहते थे। कि शबरी ने यह सोचा था कि मैं रामभद्र को फल अर्पण करूँगी। पर श्री रामजी कोई भी पदार्थ द्विज को (ब्राह्मण) अर्पण किये बिना ग्रहण नहीं करेंगे। अतः यहाँ कोई द्विज भी नहीं है। तो द्विज नामधारी इन दांतों को ही अर्पण करके फिर रामजी को फल खिलाऊँगी।

द्विज ब्राह्मण को कहते हैं। कारण द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्या जायते इतिद्विज, जिनके दो जन्म होते हैं। एक माता की कुक्षि से जन्म होना दूसरा जन्म यज्ञोपवीत संस्कार का होना इससे यह द्विज कहलाते हैं। इसी प्रकार पक्षियों को भी द्विज कहते हैं। इनका भी दो प्रकार से जन्म होता है। प्रथम अण्डा के रूप में फिर पक्षी के रूप में। इन दांतों को द्विज कहते हैं। कारण इनके भी दो जन्म होते हैं। एक बार आकर चले जाते हैं। फिर इनका जन्म होता है। शबरी ने इन द्विज नाम धारी दाँतों को ही पहिले फल अर्पण किये थे। फिर श्री रामजी को चार फल दिये। यह प्रेमा भक्ति है। श्रीराम के पास कोई खट्टा फल न चला जाय। यह सब भावुक भक्तों के भाव हैं। (भक्ति प्रियो हि माधव) यह एक भक्ति ग्रन्थ है इसमें इस प्रकार की शङ्का करना अपराध है।

यहाँ इतना इसलिये लिखना पड़ा कि इस रसमयी लीला का सभी प्रेम से आश्वादन कर सकें। अभी तो गोपियों के प्रेम की वार्ता बहुत आयेगी अहिरिव गति प्रेम्णः स्वभाव कुटला भवेत्। प्रेम की चाल सर्प की तरह स्वाभाविक टेढ़ी-

होती है। इसलिए प्रेम मार्ग में अनेक शङ्का प्रकट हो जाती है। अब आगे भी गोपियों का आगमन सुनिये :—

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योन्या
अंजन्त्यः काश्चलोचने
व्यत्यस्त वस्त्राभरणाः
काश्चित् कृष्णान्ति कं ययुः ॥२८॥

जो अपना शृंगार कर रहीं उनने अपने शृंगार छोड़ दिये। एक गोपी काजर लगा रही थी। उसने एक आँख में काजर लगाया। उसी समय वंशी धुनि सुनी। वह पटक काजर और प्रेम की चादर एक आंख में अंजन वह दुखभंजन के पास चल दी।

आज उन देवियों को वस्त्र आभूषण पहरने का भी ध्यान नहीं रहा।

हारं श्रोणि तटे मणीन्द्र रसना वक्षोजयोर्नूपुरे।
दोष्णारंगद मङ् घ्रि पद्म युगले केशेषुनीवेर्मणिः॥
नीवौ केशमणिं दधुर्मृगदृशोमन्ये प्रमोदोदया।
दङ्गान्येव परस्परं विदधिरे हर्षप्रसादोत्सवम् ॥२९॥

हार को कमर में पहनने लगीं तथा कंधनी गले में लटका लीनी। हाथों में नूपुर पहरने लगीं तथा पैरों में कङ्कड़ पहन लिए। इस प्रकार उनको वस्त्रावरण धारण करने का अनुसंधान भी नहीं रहा :—

एक उठ दोरी एक भूल गई पोरी
एक राख भर कोरी सुध रही ना तनमें

एक खुले वार एक तन की ना सम्भार
एक भूषण उतार चली दामिनी ज्यों घन में
एक उजियारी गोपीनाथ ने निहारी
एक भई बोरी डोले प्रेम के उमंग में
ऊधमभयो है घड़ी चार व्रज मण्डल में
बाँसुरी बजाय श्याम आज वृन्दावन में

व्रज में चारों ओर प्रेम की नदी उमड़ पड़ी है। उस प्रेम नदी में प्रेमीजन उन लहरों में गोता लगा रहे हैं। मानो जहाँ प्रेमानन्द का कान्त है उसके पास जा रहे हैं।

वाजी घर आई वाजी देखवे कों आई
वाजी मुरझाई तान सुन गिरधर की
वाजी हंस बोले वाजी करत किलोले
वाजी संग लागी डोले सुधिविसारघरकी
वाजी ना धरे धीर वाजी ना सम्भारे चीर
वाजिन कें उठी पीर दावानल भर की
वाजी कहे वाजी वाजी कहै कहाँ वाजी
वाजी कहै वाजी वांसुरी सांवरे सुधर की

अब उन प्रेमवती गोपियों को कौन रोक सकता है। परिवारीजनों का प्रयास भी निष्फल हो गया।

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिः भ्रातृबन्धुभिः।
गोविन्दाप हृतात्मानः न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥३०॥

जिन देवियों के मन गोविन्द ने हरण कर लिये हैं। वह

किसी के रोके से रुक सकती है। उनके पतियों ने उनको रोका तुम कहाँ जा रही हो कारण पति ही शुभाशुभ के भागी होते हैं। उनके माता-पिताओं ने भी स्नेहवश रोका था। अपकीर्ति के वश भाइयों ने भी रोका। कुलदोष की शङ्का से कुटुम्बियों ने भी उनको रोका था। पर वह किसी के रोकने से रुकी नहीं।

ये स्त्रियां परतन्त्र हैं। इनको कभी स्वतन्त्रता नहीं है।

रक्षेत्कन्यां पिता प्रौढ़ां पतिः पुत्रस्तु वार्द्धके।
अभावे ज्ञातय स्तासां न स्वातन्त्र्यं क्वचित्स्त्रियाः ॥३१॥

कन्या अवस्था में यह माता-पिता के अधीन रहती हैं। युवा अवस्था में यह पति के आधीन रहती हैं और वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहती है अभाव में ज्ञाति के वान्धवों की देख-रेख में रहती हैं। इनको कभी स्वतन्त्रता नहीं रहती। पर आज वह किसी के रोकने से नहीं रुकी।

एक ब्रजवासी ने अपनी पत्नी को रोक लिया। उसने उस को कोठे में बन्द कर ताला लगा दिया। पर वह गोपी तो अपने शरीर को त्याग कर परमात्मा के चरणों में लीन हो गई।

इसी प्रसंग में राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूछा—

कृष्णं विदुः परं कान्तं नतु ब्रह्मतयामुने
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथं ॥३२॥

हे मुने! यह व्रज देवियाँ श्री कृष्ण चन्द्र को ब्रह्म स्वरूप न जानकर उनको अपना कान्त ही मानती हुई गोपियाँ श्री कृष्ण चन्द्र को केवल कान्त भाव से ही जानती थीं। उनकी वृद्धि श्री कृष्ण के प्रति ब्रह्म परक नहीं थी। फिर गुणों में उनकी

बुद्धि की वृत्तियाँ लगने पर भी उनमें गुणों के प्रवाह कैसे शान्त हो गये।

व्रज सुन्दरियों का नित्य मण्डल प्रवेश जानते हुए भी परम भागवत राजा परीक्षित जनता के संशय निवृत्ति के लिए ही ऐसा प्रश्न कर रहे हैं। यह महाराज का अज्ञान एवं संशय नहीं है।

परम भागवत राजा परीक्षित का नाम ही इसलिये है। श्री कृष्ण परीक्षणात्सर्वेषां हृद्वृत्ति परीक्षणाद्वा परीक्षित। रस परीक्षणाच्च ॥ इन तीन हेतुओं के कारण ही आपको परीक्षित कहते हैं। और भी सुनिये—

परि सर्वतोभावेन क्षीयते हन्यते दुरितं येन स परीक्षित।

स एव लोके विख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः।
गर्भेदृष्टःमनुध्याय्यन्परीक्षेत नरेश्विह ॥३३॥

राजा परीक्षित के इतना कहने पर कितने भाव प्रगट हो रहे हैं। तथा शुकदेव जी कहते हैं। महाराज गोपियों ने भगवान श्री कृष्ण को अपना कान्त ही माना है। कारण सुख का अन्त यहीं होता है। उनके अतिरिक्त सुख की भाषा और कहाँ मिल सकती है। गोपियों ने प्रभु को ब्रह्म भाव से नहीं माना। कारण ब्रह्मभाव की उपासना मोक्ष देने वाली होती है। इस प्रेम साम्राज्य में मोक्ष की इच्छा नहीं रहती।

न नाकपृष्टं न च पारमेष्टयं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समंजसत्वा विरहय्यकांक्षे ॥३४॥

परात्पर भगवान के परम भक्त न तो स्वर्ग की इच्छा रखते

और न ब्रह्मलोक की इच्छा रखते हैं और न उनको वरुण राज्य सिंहासन की आवश्यता है और न वह सार्वभौम साम्राज्य पद के लोलुप हैं और तो क्या उनको जन्म मरण एवं योग सिद्धि की भी इच्छा नहीं होती। कारण वह समझते हैं। कि यह सब वस्तु रज प्रधान है। देखिये भक्त की कितनी उच्च कोटि की भावना है। वह कहता है कि वर्णाश्रम धर्म को यथा विधि सेवन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इसके बाद (ब्रह्मणा सह मुच्यते) इस वाक्य के अनुसार ब्रह्मा के साथ मोक्ष मिलती है। पर यह भी एक पराधीनता है। स्वर्ग मिलने पर वह कहते हैं कि यह भी कालान्तर में नष्ट हो जाती है। क्षीणे पुण्येमर्त्य लोके विशन्ति। तीसरा फल सार्वभौम सम्राट होने की इच्छा सार्वभौम में सब लोकों में यश फैलता है। पर यह भी यज्ञ दानादि सत्कर्म से और यज्ञ दानादि सत्कर्म धन से होते हैं। और धन में तो राग, द्वेषादि अनेक उपाधि लगी रहती है। इसलिए वह राज्यासन की भी इच्छा नहीं करते। अब रहा वरुण राज्य का मिलना। यह है तो सुन्दर नीचे के लोकों का आधिपत्य यहाँ सब लोकों से अधिक सुख भोग है। पर वह सब लक्ष्मी से होते हैं और वह लक्ष्मी आपने बलि से छीन कर इन्द्र को दे दी है। यह एक विरोध बढ़ाने वाली बात हो गई। और वह है चंचला। इसलिये मुझे वरुण राज्य की भी इच्छा नहीं। अब रहा योग सिद्धि आपसे वहिर्मुख योगाभ्यासी जाने क्या-क्या काम कर डालते हैं। इससे वह भी योग भ्रष्ट हो जाते हैं। इससे मुझे इसकी भी इच्छा नहीं। तब क्या चाहता है। हे सर्वानन्द-स्वरूप मैं तो आपको चाहता हूँ। कि प्रतिदिन आपकी सेवा करता रहूँ। आपकी सेवा रूप भक्ति को छोड़ कर कौन इस प्रपंच में पड़ेगा। यह वचन है भक्तराज वृत्रासुर के। इसी प्रकार गोपियों की भावना है। वह कान्त के पास आई हैं।

एक गोपी जिसने शरीर त्यागा है। यह केवल मरने का अध्यवसाय है। अर्थात् उद्योग (श्री कृष्ण ध्यानानु भावेन स्वदेह मन्तर्धानम् नित्य सिद्ध सदृशेनालौकिकेन देहेन तं प्रापुरिति) सिद्ध गोपी अलौकिक देह से परमात्मा के समीप पहुंच गई। यहाँ मृत्यु नहीं कहना।

श्री शुकदेव जी कह रहे हैं योगेश्वर श्रधोक्षज भगवान में ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। परात्पर भगवान की प्राप्ति के पाँच साधन हैं। श्री कृष्ण से प्रेम करना। उनमें भक्ति करना उनसे भय करना। उनसे क्रोध करना। उनसे स्नेह करना। तुम अभी एक कथा सुन चुके हो कि शिशुपाल भगवान से शत्रुता करता भी मुक्ति को प्राप्त हो गया। गोपियों का प्रेम था एवं कान्त उसे कहते हैं जहाँ सुख का अन्त होता है। श्री कृष्ण चरणों में ही सुख का अन्त है। अतः आप कान्त हैं।

व्रज ललनाओं के श्री कृष्णचन्द्र के पास आने पर भगवान भी उनको देख कर उनका स्वागत करते उनसे कहने लगे।

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कश्चिद्व्रूतागमन कारणम् ॥३५॥

हे बड़भागिनियों! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। कहिये और मैं आपका क्या प्रिय करूँ। पर यह बताइये आप सब इस समय कैसे आइयो; कहो व्रज में तो सब मंगल है।

देखो कैसी घोर रात्रि का समय है। चारों ओर भयंकर जीव घूम रहे हैं और आपके साथ कोई रक्षक भी नहीं है। अतः आप सब यहाँ से शीघ्र लौट कर अपने स्थानों पर

जाइये, तुम्हारे माता-पिता पुत्र भाई पति तुमको देख रहे होंगे। आप उनका अपराध मत करो। शीघ्र लौट जाओ। तथा अपने-अपने गृह-गृहस्थ के कामों को सम्भालिये।

गोपियाँ बड़े आश्चर्य में पड़ गईं कि श्याम सुन्दर क्या कह रहे हैं। उसी समय प्रभु ने कहा :—

अथवा मद्भिः स्नेहाद्भवन्त्यो यन्त्रिताशयाः।
आगताह्युपपन्नंवः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥३६॥

प्रभु अपना भाषण बराबर दे रहे हैं। गोपियो! यदि तुम मेरे स्नेह वश यहाँ आई हो, तब तो स्नेह तो मुझसे प्राणी मात्र करते हैं। एक गोपी ने कहा, प्रभु तब आप भी उनके साथ कुछ सद्व्यवहार करते हो। प्रभु ने कहा—प्राणि मुझसे प्रीति मात्र करते हैं। मुझसे कुछ याचना नहीं करते। गोपी—अच्छा, तो आपसे कोई याचना नहीं करता तो आपको ही कुछ सोच कर उस स्नेह का प्रसाद देना चाहिये। कृष्ण—गोपियों, मैं उनको क्या प्रसाद दे सकता हूँ। उनकी मेरे सामने आते ही सब इच्छा समाप्त हो जाती है। रामावतार के समय विभीषणराज जब रामजी की शरण में आये थे। उस समय न जाने वह क्या-क्या सोच रहे थे। परन्तु श्रीराम के दर्शन होते ही सब कुछ सोचना समाप्त हो गया।

उर कछु प्रथम वासना रही।
प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥

गोपियो, अब आप समझी भक्त मुझसे कुछ चाहना नहीं करता केवल प्रीयन्तेमयि स्वरूप मात्र न तु प्रत्युप कारिणी। भक्तजन प्रत्युपकार की दृष्टि से मेरा भजन नहीं करते। पर-

मात्मा से वही प्रेम करता है। जिनका अन्तःकरण समस्त काम-नाओं से निर्मुक्त हो गया है। कामना वाले अनेक देवताओं की उपासना करते हैं और (अकामः सर्व कामों वा मोक्ष काम उदारधीः। एक परात्पर श्री कृष्ण का ही चिन्तवन करते हैं।

भगवान बोले व्रज सुन्दरियो अब अधिक समय यहाँ बिताने का नहीं है। आप सब अपने घर जाकर अपने पतियों की सेवा करिये।

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां
परोधर्मो ह्यमायया
त द्बन्धूनां च कल्याण्यः
प्रजानां चानु पोषणम् ॥३७॥

निष्कपट भाव से भर्ता की शुश्रूषा करना ही स्त्रियों का परम धर्म है तथा उनके बन्धुओं का सन्मान करना एवं प्रजा का पोषण करना ही उनका धर्म है। भर्ता कैसा भी हो वह सदा सेवनीय है। यदि वह खोटे स्वभाव का है यां वह दुर्भागी भाग्य हीन है। यां वह वृद्ध हैं। जड़ रोगी निर्धन होने पर भी उसका परित्याग नहीं करना चाहिये। पति सेवा से ही स्त्रियों की कीर्ति बढ़ती है। सद्भाव रखने वाली सेवा परायणा स्त्रियों के घर में कभी कलह नहीं होता।

देवियो—उप पतियो का तो कभी ध्यान ही नहीं करना चाहिये। यह अपकीर्तिकारक एवं नरक में डालने वाला है। अच्छी स्त्रियाँ कभी कहीं नहीं भटकती और मेरी पूजा करने की भावना वाली देवियाँ भी अपने घरों में बैठकर पूजा किया करती हैं।

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयिभावोनु कीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियाततो ग्रहान् ॥३८॥

मेरी कथाओं का श्रवण करो तथा मेरा दर्शन करो। मेरा ध्यान करो। मेरा कीर्तन करो। यह सब दूर रह कर ही शोभा देता है। मैं पास में रह कर ऐसी साधना करने वाले से प्रसन्न नहीं हूँ। इसलिये आप सब अपने-अपने घरों में जाइये, जाओ-जाओ अपने घरों को जाओ देर मत करो। रात्रि हो रही है। जल्दी यहाँ से जाओ।

इति विप्रियमाकर्ण्य
गोप्यो गोविन्द भाषितम्
विषण्णा भग्न संकल्पा
श्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥३९॥

व्रज देवियाँ गोविन्द के इस प्रकार विप्रिय बचन को सुन कर दुःखी हो गई उनके उत्साह नष्ट हो गये। वह एक बड़ी चिन्ता में पड़ गई। श्याम सुन्दर आज ऐसे कठोर वचन क्यों कह रहे हैं।

कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद्
विम्बाधराणि चरणेनभुवं लिखन्त्यः
अस्त्रैरुपात्तमसिभिः कुच कुंकुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य ऊरु दुःखभराःस्म तूष्णीम् ॥४०॥

व्रज किशोरियों के मस्तक नव गये न जाने कितने भार से दब गई हैं। उनके गरम-गरम श्वास निकलने लगे। ओष्ट

सूख गये पैर के अँगूठे से भूमि को कुरेदने लगी और उनके कजरारे आँसुओं से वस्त्र भीग गये। एकदम चुप होकर बैठ गई।

नीचा मुँह करने के आचार्यों ने अनेक भाव लिखे हैं कि गोपियों के मस्तक क्यों नव गये।

१—उनको लज्जा आगई कि प्रभु ने हमको बुलाया नहीं है हम सब बिना बुलाये आई हैं।

२—मुख नीचा करके देवियाँ यह देख रही हैं कि भगवान के वचन बाण से कहीं यह हमारा कलेजा तो नहीं फट रहा।

३—भगवान के वचन प्रवाह में हम बह न जायँ, इसलिये नव गई। नदी में जो पेड़ नव जाते हैं। वह नहीं उखड़ते जो सीधे खड़े रहते हैं। वह नष्ट हो जाते हैं। इसी लिये गोपियाँ नव गई हैं।

४—अथवा श्याम सुन्दर हमारे शोक सन्तप्त मुख को देखेंगे तो उनको भी दुःख होगा: इसलिये मुख नीचे कर लिये।

५—मुख नीचा करने का एक अभिप्राय यह भी है कि यह मस्तक आपके सामने है इसे आप चाहो तो रखिये या काट दीजिये।

गोपियाँ पैरों से भूमि कुरेदने लगी तात्पर्य यह है कि जब स्त्रियों से कोई विषम बात कहता है। तब वह कहती हैं कि हे पृथ्वी मां तू अब फट जा। जिससे हम उसमें समा जाय। अब हमसे यह कठोर वचन सुने नहीं जाते। ऐसा ही सीताजी के कहने पर पृथ्वी फट गई थी और सीता उसमें समा गई थी।

गोपियों के नेत्रों से काले-काले आंसु निकल रहे हैं। इसका यह भाव है कि श्यामसुन्दर यह काजल की स्याई है। इससे बड़े-बड़े विद्वान् आपके चरितों को लिखेंगे कि श्यामसुन्दर ने गोपियों के साथ कैसा व्यवहार किया था।

निठुर बचन सुन श्याम के
युवति उठीं अकुलाय
चकित भई मन गुन रहीं
मुख कछु वचन न आय

जैसे-तैसे सावधान होकर अकुला कर कुछ कहने लगीं।

मैवं विभोऽर्हति भवान्गवितुं नृशंसं
संत्यज्य सर्व विषयां स्तव पाद मूलं
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मात्यजां स्मा
न्देवो यथादि पुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥४१॥

हे विभो! आप हमसे ऐसे कठोर वचन मत कहो। हम संसार की समस्त विषय वासनाओं को त्याग कर आपके चरणों में आई हैं। हे दुरवग्रह आप हमारा त्याग मत करो। अपने भक्तों का पालन करो। जिस प्रकार आदि पुरुष मुमुक्षू-जनों का भजन करते हैं। श्यामसुन्दर अभी तो आपने ऐसा कहा कि (प्रियं किं करवाणि) मैं आपका क्या प्रिय करूँ और अभी-अभी अपने वचनों को भूल गये। आप सत्य प्रतिज्ञ हैं जो कहते हो वही करते हो। गोपायेत्स्वात्म योगेने सोऽयं मे व्रत आहित।

यह आपकी व्रजवासियों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा है। आज अपनी प्रतिज्ञा को भी भूल गये और हमसे ऐसे कठोर वचन कह रहे हो।

एक सखि ने कहा—बहिन, यह आज किसी की बातों में आकर आज अपनी प्रतिज्ञा भूल गये हैं।

एक गोपी ने कहा—बहिन, श्यामसुन्दर पर और तो किसी का प्रभाव पड़ नहीं सकता। हाँ, यह वंशी ही श्यामसुन्दर को बहकाती रहती है। उस समय गोपी जो श्याम को दुरवग्रह कह चुकी है। उसने कहा, हे श्यामसुन्दर आप इस वंशी की बातों में आ गये हैं।

याकी श्याम जात नहिं जानी
बिन बूझे बिन ही पहिचाने
कर बैठे पटरानी। जाकी०
बारम्बार लेत गल बैंया
सुन सुन मधुरी वानी
गांव नाम नहिं या वंशी को
याइ कहां सों आनी
निज कुल दहत विलम्ब न कीनो
कौन धर्म ठहरानी। जाकी०
सुनहु सूर याकी कछु करनी
यह मुख नहिं जात बखानी

श्यामसुन्दर यह बात सत्य है। तब तो यह वंशी अपने कुल की तरह और भी कुलों का नाश कर सकती। तथा आपके गुणों में लांछन भी लगा सकती है। अतः आप अपने उन्हीं वचनों पर ध्यान दीजिये कि—॥प्रियं किं करवाणिवः॥ मैं आपका क्या प्रिय करूँ। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने कहा—गोपियो, गृह सुख त्याग कर तुम यहाँ मेरी चरण सेवा करने आई हो। इसमें तुमको क्या सुख मिलता है। उस समय प्रवीणा सखि ने तत्काल

उत्तर दिया। श्यामसुन्दर आपके श्री चरणों में त्रिवेणी जी विराजमान है।

श्री० ली०

नखसित रुचि गंगा
कृष्ण पाद प्रयागे
तदुपरिशित रोचि
र्भानुजा संगतासीत् ॥४२॥
अरुण किरण धारा
धातृ कन्याप्यधस्तात्
लसति त्रिखिल सर्वा
भीष्टदेयं त्रिवेणी ॥४३॥

आपके इन चरण नख की ज्योति में त्रिवेणी गंगा, यमुना, सरस्वती बिराजमान है। नख में जो सफेद झलक है। यह श्री गंगा है तथा नखों में नीलम की झलक श्री यमुना है एवं यह नख में जो ललोंई है। यह सरस्वती है। अब आप ही बताइये। इस त्रिवेणी संगम को छोड़ कर और कहाँ जाय।

श्यामसुन्दर ने कहा—देवियो, अपने घरों के राज्य अधिकार को छोड़ कर यहाँ दास्य भाव ग्रहण करने को क्यों आई हो। तब एक देवी ने कहा—श्यामसुन्दर जो सुख आपके भजन में है। उस सुख की घर में गन्ध भी नहीं है। आपका भजन सुखावधि रूप है और यह घर गृहस्थ दुःखावधि रूप है। इसलिये हमने यह दास्य भाव स्वीकार किया है।

श्यामसुन्दर ने कहा—गोपियो, तुमको परलोक का भी भय नहीं है। उस समय चन्द्रानना कहने लगी हे श्याम! सुन्दर

आप जो धर्म की बातें हमारे सामने करते हो यह धर्म सब आप में ही शोभा देता है। हम तो आपकी एक बात को ही मानती हैं।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहंत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिस्यामि मा शुच ॥४४॥

सभी धर्मों को छोड़ कर एक मेरी शरण में आइये। मैं ही सब पापों से बचा दूँगा। क्या यह आपका वचन नहीं है। इससे बड़ा धर्म का साधन और दूसरा क्या हो सकता है। (त्वय्या राधिते सर्वमाराधितं भवति) आपकी आराधना से ही सबकी आराधना का फल प्राप्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में उन पीड़ा के देने वाले पति पुत्रादिक का क्या प्रयोजन है।

हे अरविन्द नेत्र ! आप हमारे ऊपर कृपा करिये। हमारे पैरों में अब यहाँ से लौटने की शक्ति नहीं है। कारण हमारा चित्त तो आपने हरण कर लिया है। अब आप हमको अपने अधरामृत पूरक से सींचिये। अन्यथा हम इस विरहाग्नि में जल कर ध्यान योग से आपके चरण कमलों में प्राप्त हो जायगी। श्यामसुन्दर आपके चरण रज की तो हरिबल्लभा श्री लक्ष्मी जो सदा वक्षस्थल में रहने वाली है। वह भी चाहना करती है। कारण वक्षस्थल एक ही रस हैं और चरण तल सर्व रसाश्रय भूत है।

हे ब्रज की पीड़ा हरने वाले हम आपके चरण शरण त्याग कर अब कही नहीं जायगी।

तत्वात्मनां पुरुष भूषण देहि दास्यं। तुम्हारी सेवा की आशा करने वाली सदैव आपके सुन्दर मुख कमल के दर्शनों की भूख

इन सखिओं को हे पुरुष भूषण अपना दास्य भाव देने की अनुकम्पा करिये।

वीक्षालकावृतमुखं
तव कुण्डल श्री
गण्डस्थलाधर सुधं
हसितावलोकम्
दत्ताभयं च भुज दण्ड युगं
विलोक्य
वक्षः श्रियैक रमणं
च भवाम दास्यः ॥४५॥

हे प्रियतम ! आपका यह सुन्दर मुखकमल जिस पर यह दिव्य मनोहर अलकावलि बिथुर रही है। आपके यह कमनीय कपोल जिन पर यह कुण्डल झलक रहे हैं। आपके यह मधुर अधर जो सदा सुधा रस को बरसाने वाले हैं। यह आपकी मनमोहनी चितवन जो मन्द हसन से उल्लसित हो रही है। यह आपकी दोनों भुजायें जो शरणागत को अभय देने वाली है। यह आपका वक्षस्थल जो कि लक्ष्मी जी का क्रीड़ास्थल है जिसे देख कर हम आपकी दासी बन गई हैं।

एक व्रज सुन्दरी बोली—हे श्यामसुन्दर आपने जो औपपत्य में छैः दोष बतलाये हैं कि—

अस्वर्ग्यमयशस्यं च
फल्गुकृच्छ्रं भयावहम्
जुगुप्सितं च सर्वत्र
औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥४६॥

औपयत्य (१) नरक में ले जाता है। (२) अपयश कराता है (३) तुच्छ है एवं कष्ट देने वाला है (४) भय देने वाला है तथा सर्वत्र निन्दित है।

पर हमको इनमें भी गुण दीख रहे हैं। कारण आपके भक्त-जन स्वर्ग अपवर्ग तथा नरक इनमें तुल्यार्थदर्शी होते हैं। तथा यह छैः दोष आपके छैः गुणों को देख कर गुणों में ही परिणित हो गये हैं।

क्वचित् गुणोऽपि दोषस्यात्।
दोषोऽपि विधिना गुणः ॥४७॥

कहीं गुणों में भी दोष आ जाते हैं तथा दोषों में गुण भी आ जाते हैं। जैसे वेदाध्ययन ब्राह्मण को गुण हैं तथा अपात्र को दोष है। हे सर्वात्मन्! हम आपकी दासी हैं। देखो, आपके श्री चरणों को देख कर हमने अस्वर्ग्य स्वीकार किया है। आपके गण्ड स्थल को देख कर हमने अस्वर्ग्य स्वीकार किया है। आपके गण्डस्थल को देखकर हमने अपयश स्वीकार किया है। आपकी अधर सुधा को देख कर तुच्छता स्वीकार की है। आपकी हँसी भरी चितवन को देखकर कष्ट स्वीकार किया है। आपके भुजदण्ड देख कर भय स्वीकार किया है तथा आपका वक्षस्थल देख कर निन्दा भी स्वीकार कर ली है। हे नाथ! मुखादि दर्शन रूप मूल्य से खरीदो। हम आपकी दासी है। आपका दास्य भाव परम पुरुषार्थ साधक है। हमको आप कोई विभीषिका मत दिखाइये। हम विप्र पत्नियों की तरह आपकी बातों में नहीं आयेगी। वह विचारी माथुर ब्राह्मणों की पत्नी सब कुछ त्याग कर आपके चरणों में आई थी पर आपने एक ही बात कह कर उन गरीबनियों को भगा दिया कि तुम्हारे पति यज्ञ कर रहे हैं। उनके यज्ञ में विघ्न पड़ेगा

अतः तुम सब यज्ञ स्थली में लौट जाओ। पर हम आपकी बातों में नहीं आयेंगी। हे आर्त बन्धो ! आपका अवतार व्रजवासियों की रक्षा के लिए ही हुआ है। विश्व पालन के लिए नहीं। कारण विश्व रक्षा तो आप सदा और भी अवतारों में कर सकते हो किन्तु व्रजवासियों की रक्षा और किसी अवतार में नहीं हो सकती। गोष्ट में आप नृसिंह रूप धारण करके नहीं आ सकते हो। गौ सेवा तो इस गोपाल स्वरूप से ही हो सकती है। हे श्यामसुन्दर अब आप देरी मत करो। अपनी दासियों पर शीघ्र ही अनुकम्पा करो। जैसे गजेन्द्र की टेर सुन कर आप नंगे पैर ही चल दिये।

या द्रोपदी परित्राणे या गजेन्द्रस्य रक्षणे ॥४८॥

वह आज आपकी करुणा कहां चली गई।

गजेन्द्र की टेर सुन कर बिना पादुका के ही चल दिये। गरुण पर उछल कर बैठ गये। वहाँ अपने सेवकों का भी सहारा नहीं लिया। गरुण पर आसन लगाना भी भूल गये। और एक बड़े आश्चर्य की बात उस समय लक्ष्मी को भी साथ नहीं लिया। हे भक्त वत्सल ! आज आपकी वह भक्त वत्सलता कहाँ गई। व्रज की वाला आज करुणावतार के सामने विनय कर रही हैं पर श्यामसुन्दर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं। हाय ! वह तो आज बड़े निठुर बन रहे हैं।

एक गोपी ने कहा—प्रियतम, हमको आप आज ऐसी शिक्षा क्यों दे रहे हो। हमको यह आपकी नीति अनुकूल नहीं है। जो अपराधी हैं उनको तो आप शिक्षा नहीं देते और जो निरपराधी हैं उनको उपदेश कर रहे हो। यह शिक्षा तो इस खलमुखवारी मुरली को देनी चाहिए। जो सदा मर्यादा का हरण

करने वाली है उसको तो आपने हृदय से लिपटा रक्खा है। श्याम आप स्त्रियों के हृदय को जानते हुए भी ऐसा कह रहे हैं।

परोपदेशे पाण्डित्यम्

यह बात संसार में प्रसिद्ध है यह कहने से ही काम नहीं चलेगा। पहले उपदेशक को भी आचरण करना पड़ता है, तब कहीं उपदेश करने का अधिकारी होता है। इसलिये यह आप का उपदेश पति सेवा परायणता का तभी सफल हो सकता है जबकि आप स्त्री का रूप धारण करके पति की सेवा करोगे।

श्यामजी शरीरधारियों के परम प्रिय आत्मा आप ही हो। अतः प्रेम तो आत्मा से ही किया जाता है और सब प्रेम तो स्वार्थमय होते हैं। और स्वार्थमय प्रेम शृखला एक न एक दिन टूट ही जाती है। एक परमात्मा ही विशुद्ध प्रेम के स्थान हैं तथा आनन्द के अधिष्ठाता हैं और सबके बन्धु हैं। इसीलिये हम आपके पास आई हैं। हमारे साथ ऐसा निठुरता का व्यवहार न करिये।

निठुर वचन सुन श्यामके
युवति उठीं अकुलाय
चकित भई मन गुनि रही
मुख कछु वचन न आय

ब्रज युवतीजन अब मौन हो गई। उनको जो कुछ कहना था, सब कुछ श्यामसुन्दर से निवेदन कर दिया। श्यामसुन्दर भी एक-एक सुन्दरी के मनोभावों को पहचान रहे हैं।

विरह विकल चिन्ता अतिवाढी,
रही चित्र पुतली सी काढी।

रसिक शिरोमणि श्री श्याम जी ने जो खेल खेला है उसे वह व्रजांगना समझ न सकी। और यशोदानन्दन मन ही मन हँस रहे हैं।

विरह विकल लखि गोपिकन
कृपा सिन्धु भगवान
उमग उठे दृग भरि लिये
दीन वचन सुन कान

श्री शुक उवाच

इति विक्लवितं तासां
श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः
प्रहस्य सदयं गोपी
रात्मारामोप्यरीरमत् ॥४९॥

इस प्रकार व्याकुल गोपियों को देख कर योगेश्वरेश्वर भगवान श्री कृष्ण प्रसन्न होकर उस समाज में रमण रासलीला करने लगे। उसी समय आकाश में दुन्दुभी घोष होने लगा। झांझ ढप ढोल आदि अनेक वाद्य बजने लगे। गोपियों के बीच में श्री राधा कृष्ण नृत्य करने लगे। व्रजाङ्गनाओं के बीच में विराजमान श्री कृष्ण चन्द्र की अत्यन्त शोभा बढ़ रही है। गोपियाँ विप्रलम्भ के कारण अभी तक सर्वेश्वर से दूर खड़ी थीं, अब प्रभु के समीप में आ गई हैं। भगवान भी हँस रहे हैं तारागणों में जैसे चन्द्रमा शोभा देता है। उसी प्रकार आपकी गोपियों में शोभा बढ़ रही है।

नृत्यारम्भ में गोपियाँ इस प्रकार गान करने लगी।

जय श्री कृष्ण कमलदल लोचन,
दुःख मोचन मृग लोचन राधा ।
जय श्री कृष्ण श्याम घन सुन्दर,
दिव्य छटा तन गौरी राधा ॥
जय श्री कृष्ण रसौली नागर,
रसिक रसीली नागरि राधा ॥
जय श्री कृष्ण छबीलो दूलह,
नवल छबीली दुलहन राधा ॥
जय श्री कृष्ण मनोहर मूरति,
परम मनोहर मूरति राधा ।
जय श्री कृष्ण सदा सुखसागर,
सहज सदा सुख सिन्धुनि राधा ॥
जय श्री कृष्ण राधिका वल्लभ,
कृष्ण वल्लभारसिकन राधा ।
जय श्री कृष्ण पिया मनमोहन,
प्राण प्रिया मनमोहनि राधा ॥
जय श्री कृष्ण लाढ़लो प्रियतम,
प्यारी प्रिया लाढ़िली राधा ।
जय श्री कृष्ण हरे हरि स्वामो,
श्री हरि प्रिया स्वामिनो राधा ॥

श्यामसुन्दर भी उन ब्रज ललनाओं के साथ नाचने लगे तथा गान करने लगे। वह रस स्थली बड़ी सुहावनी थी।

श्री यमुना का पुलिन जहाँ की सुकोमल रेती एवं शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रही थी।

परस्पर आलिंगन के लिए भुजायें उठ रहीं थीं। आलिंगन करना, हाथ पकड़ कर नृत्य करना, अलकावलियों का स्पर्श एवं उरु, स्तन, नाभि का स्पर्श करना, हास्य वचन बोलना, क्रीड़ा एवं चितवन भरी दृष्टि से देखना। ऐसे रासेश्वर भगवान हास्य के द्वारा व्रज सुन्दरीन को प्रेम उद्दीपन कराने लगे। यह अलौकिक प्रेम है। यह प्राकृतिक प्रेम नहीं है। प्राकृतिक प्रेम क्षीण हो जाता है और अलौकिक प्रेम प्रतिदिन बढ़ता है।

इस रास महोत्सव में प्रेम रस बढ़ रहा है।

रमत रास रस गोप कुमारी,
नन्द नन्दन पिय की सब प्यारी।
करत गान कोकिला लजावे,
हाव भाव करि पियहि रिझावे॥

व्रज देवियों ने तो यह समझ लिया कि श्यामसुन्दर अब हमारे आधीन हैं।

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः।
अत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योभ्यधिकं भुवि॥५०॥

श्री कृष्ण चन्द्र के द्वारा जब व्रज सुन्दरियों को मान मिला। तब वह अपनपे को सर्वाधिक समझने लगीं, कि अब हमारे बराबर संसार में कोई बड़भागी नहीं है। इस प्रकार उनको गर्व ने दबा लिया और कहने लगीं।

सुनो श्याम में अति श्रम पायो,
अब तो मोपे जात न गायो ।
एक कहत मम पांय पिराही,
मोपे नृत्य होत अब नाहीं ॥

इस प्रकार व्रज सुन्दिरियों के मनोभाव उनकी गर्व भरी वाणी सुन कर प्रभु को हँसी आ गई। परात्पर भगवान भक्तों पर बड़ी कृपा करते हैं। केवल एक गर्व किसी का नहीं सह सकते।

करत सदां भक्तन मन भाई,
एक गर्व श्यामहि न सुहाई ।

तासांतत्सौभगमदं वीक्षमार्नं च केशवः
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तर धीयत ॥५१॥

गोपियों के इस सौभग मद को देख कर नवलकिशोर उन को शिक्षा देने को उनके गर्व को दूर करने के हेतु अन्तर्ध्यान हो गये। इसमें कितने ही कारण हैं। व्रज देवियों के गर्व का खण्डन करना तथा उनके ऊपर कृपा करना, उनको शिक्षा देना एवं छिप कर उनकी लीला देखना कि मेरे वियोग में इनकी कैसी निष्ठा रहती है तथा वियोग के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता। इस उद्देश्य से रास रस में विशेष सुखानन्द प्राप्ति के लिए ही आप अन्तर्ध्यान हो गये अथवा कामदेव को भी एक झटका देने के उद्देश्य से आप अन्तर्हित हो गये।

कंसारिरपि संसार।
वासना वद्ध शृंखलाम् ॥
राधामाधाय हृदये ।
तत्याज व्रज सुन्दरीः ॥५२॥

एक गोपी श्री राधारानी ही है जिनको हृदय से लगा कर ले गये और सभी व्रज सुन्दरियों को त्याग दिया। यह देखना था कि राधा के हृदय में तो गर्व ने स्थान नहीं लिया है। अथवा एक राधा के मनाने से हो गोपियों का मान रह जायगा।

राधा को साथ ले लिया अन्यथा कामदेव समझेगा कि परास्त हो गये। मैदान छोड़ कर भाग गये।

गोपियों में बढ़े मद रोग को दूर करने के लिये ही प्रभु अन्तर्ध्यान हो गये। अब इनका गर्व स्वयं नष्ट हो जायेगा। एक गोपी को साथ ले जाना भी गोपियों के गर्व खण्डन करने का उपाय था।

भगवान के अन्तर्ध्यान होने का एक अभिप्राय यह भी प्रतीत होता है कि कामदेव पर विजय की घोषणा करना।

इस श्लोक में भगवान का नाम केशव आया है। केशव नाम के अनेक भाव हैं। यथा :—

प्रशस्ता केशाः सन्त्यस्य केशवः

जिनके सुन्दर केश होते हैं। वह केशव है। केशव—जल में शयन करने वाले को केशव कहते हैं। शेष की शय्या बना कर आप जल में ही शयन करते हैं। केशान् वपति छिनत्ति रुक्मिण इति केशवः।

वालान् कृन्तति छिनत्ति इति केशवः चैलेन वद्धातमसाधु कारणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन् विरुपयन्।

जो केशों के काटने में भी चतुर है अथवा—केशान् वयते ग्रथ्नाति इति केशवः॥ केश सम्भालने में आप अति निपुण हैं।

राधाजी के केशों का शृङ्गार प्रभु स्वयं करते हैं। जल में शयन करने से भी आपका नाम केशव हैं। यथा :—

प्रलय जले बालो पट पत्र पुटशायीति।

क ब्रह्मा ईश शंकर व अमृत इस प्रकार ब्रह्मा शङ्कर को भी अमृत दान करने वाले अर्थात् संकटों से रक्षा करने वाले इस लिये केशव कहलाते हैं।

केशवः केशिकः केशी इत्यमरः केशी दानव के वध करने से भी आपका केशव नाम पड़ा है। पृथ्वी को केशवाङ्घि प्रिय हैं। वैष्णव तोषिणी आदि में इनके अनेक भाव मिलते हैं। इन भावों से ही आप केशव कहलाते हैं। इस प्रकार केशव भगवान् गोपियों के देखते ही देखते उनके बीच से अन्तर्ध्यान हो गये।

॥ इति रासक्रीणा वर्णन नाम प्रथमोध्यायः ॥

श्री रास रासेश्वरी राधा जी

द्वितीयोऽध्यायः

श्री शुक उवाच

श्री शुकदेवजी ने कहा—महाराज परीक्षित् !

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ।।५३।।

भगवान श्री कृष्ण चन्द्र के अन्तर्धान हो जाने पर व्रज देवियां आश्चर्य करने लगीं कि श्यामसुन्दर अचानक कहाँ चले गये। विरह से सन्तप्त देवियां दुःखी होकर चारों ओर देखने लगीं। जैसे हाथी के बिना हथनियाँ दुःखी हो जाती हैं। उस रात्रि में सर्वाश्रय भगवान को ढूंढने लगीं। सभी निकुंज, वंशीवट, यमुना तट पर श्यामसुन्दर को देखा पर प्रभु के कहीं दर्शन नहीं हुए। वियोग में कैसी दशा हो जाती है।

अंगेषुतापः कृशता, जागर्यालम्ब शून्यता ।
अधृतिर्जड़ता व्याधि रुन्मादो मूर्च्छितोमृतिः ।।५४।।

वियोग में किसी को ज्वर हो आता है तथा अपने प्रिय की याद करते-करते शरीर दुर्बल हो जाता है। रात्रि में निद्रा नहीं आती। ऐसा दीखता है अब कोई सहायक नहीं है। धैर्य भी नष्ट हो जाता है। शरीर जड़ के समान हो जाता है। अनेक व्याधियां लग जाती हैं। किसी-किसी का तो चित्त चलायमान हो जाता है एवं मूर्च्छा आ जाती हैं तथा अन्त में मृत्यु तक होने का भय रहता है। आज श्री कृष्ण के वियोग में गापियों को सभी अवस्था हो गई हैं। एक मृत्यु को छोड़ कर।

कारण गोपियों को विश्वास था कि श्यामसुन्दर अवश्य दर्शन देंगे। ब्रज देवियां श्यामसुन्दर का एक क्षण भर का भी वियोग नहीं सह सकती थीं। आज प्रभु उनको छोड़ कर चले गये। इससे वह अत्यधिक व्याकुल हो रही हैं।

प्रभु को जोर-जोर से पुकार रही हैं। कहीं दूर भी होंगे तो हमारे वचनों को सुन सकेंगे।

उन्माद अवस्था में जड़ चेतन का ज्ञान नहीं रहता। इस लिये देवियां वृक्षों से पूछ रही हैं। बड़े जुगादी वृक्षों से तो नन्द सूनु का नाम लेकर पूछ रही हैं तथा छोटे वृक्षों से रामानुज कह कर पूछ रही हैं।

दृष्टोवः कश्चिदश्वत्थ,
प्लक्षन्यग्रोध नो मनः।
नन्द सूनुर्गतो हृत्वा,
प्रेम हासावलोकनैः ॥५५॥

कश्चित्कुरबकाशोक,
नाग प्रन्नाग चम्पकाः।
रामानुजो माननीना,
मितो दर्पहर स्मितः ॥५६॥

हे पीपर, वह पहिने मन्जु मनोहर नूपुर, जगत उजागर, प्रेम रस सागर, श्री कृष्ण कहीं देखे होंय तो बताय दे। हे वट, वह पहिरे पीतपट, वह श्याम नट; हम बुलाई वंशीवट, यमुना तट, वह झटपट सटक गयौ, वह नन्द को पुत्र कहीं देखो होय तो बताय दें।

हे कुरवक, श्री दामा को सख, मारो जाने वक, वह रामानुज कहीं देखो होय तो बताय दे।

हे अशोक, हम सब है सशोक, वह विशोक कहीं देखौ होय तौ बताय दै।

हे नाग, हे पुन्नाग, पहिरे वह सुर्खपाग, हमारे हृदय में उठाई प्रेम की आग, देखो वृन्दावन बाग, काली नाग के नाथ वेवारो वह रामानुज कहीं देखो होय तो बताय दे।

एक गोपी कुरवक के वृक्ष के पास खड़ी थी। दूसरी गोपी ने कहा—बहिन, तू किसके पास खड़ी है, यह हमको कुछ नहीं बतायेगा। इसका तो नाम ही कुरवक है। अर्थात् खोटे वचन बोलने वाला। इससे तो अच्छा है, इस चम्पक से पूछें। यह हर्षित मन हैं, यह कुछ पता बतायेगा। उस समय एक व्रज सुन्दरी ने कहा—बहिन, यह पुरुष जाति के वृक्ष कुछ भी नहीं बता सकते, यह विचारे स्त्रियों की वेदना को क्या समझें, इससे इन स्त्री जाति के वृक्षों से पूछना चाहिए।

कश्चितुलसि कल्याणि,
गोविन्द चरण प्रिये ।
सहत्वालि कुलैर्विभ्रद्,
दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥५७॥

गोपियां तुलसी के वृक्ष के पास जाकर बोली—अरी बहिन तुलसी, तू प्रेमानन्द में हुलसी, हम सब प्रेम व्यथा में भुरसी, तैने कहीं श्री कृष्ण देखे होंय तो बताय दै। जब तुलसी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तब एक गोपी ने कहा—बहिन, यह हमको नहीं बतायेगी। कारण यह तो हमसे सापत्न भाव रखती है। इस मालती से पूछो, अरी मालती, धरी जाने डाढ़ पर धरती, वह श्री कृष्ण कहीं देखे होंय तो बताय दै।

हे कोविदार; अंग जाकौ सुकुमार गोपी जनन के हृदय को हार, योगिओं को सार, वह नन्दकुमार कहीं देखो होय तौ बताय दै। गोपियां इस प्रकार पूछती-पूछती थक गयीं पर किसी ने श्यामसुन्दर का पता नहीं दिया।

कुंज कुंज ढूंढ़त फिरी ढूँढ़त नन्द कुमार,
प्राणनाथ पाये नहीं, विकल भई ब्रजवाम।
विरहा कुल है गई पूछत वेली वन,
को जड़ को चैतन्य, न जानत विरही जन।
हे मालति, हे जाति, यूथ के सुन दे हित चित,
मान हरन, गिरधरनलाल, मनहरन लखे, इत।
हे मुक्ताफल वेल धरे मुक्ता फल माला,
देखे नयन विशाल मोहनानन्द के लाला।
हे चन्दन, दुःखनन्दन, सबकी जडनजुडावहु,
नन्दनन्दन जगवन्दन, चन्दन हमहु बतावऊ।
हे अवनी नवनीत चोर चित चोर हमारे,
राखे कितेऊ दुराय बताय देऊ प्राण पियारे।

जब कहीं श्यामसुन्दर का पता नहीं चला। तब तो देवियों के प्राण संकट में पड़ गये। उसी समय एक व्रजकिशोरी के कानों में मोर की वाणी सुनाई पड़ी। जिसे सुनकर व्रजसुन्दरी बोलो—अरी बहिन, देखो यह मोर बोल रहा है। यह वृक्ष तो गूंगे-बहरे हैं। यह श्यामसुन्दर का क्या पता बतायेंगे। आओ, चलो, इस मोर से पूछेंगी। वह मोर नृत्य कर रहा था। गोपियों को अपनी ओर आता देख कर भागने लगा। गोपी बोलीं—अरे मोर, हम आंयी दोर तू है मन में विभोर, तैने नन्दकिशोर देखे हों तो बताय दे। पर उन पक्षियों ने भी कोई उत्तर नहीं दिया।

नूतप्रियाल पनसासन कोविदार,
जम्बर्क विल्व व कुलाम्र कदम्वनीपः।
येऽन्ये परार्थ भवका यमुनोप कूलाः।
शंसन्तु कृष्ण पदवीं रहितात्मनांनः ॥५८॥

हे रसाल, हे प्रियाल, हे पनस हे असन, हे कोविदार, हे जामुन, हे अर्क, हे विल्व, हे वकुल, हे कदम्ब, हे नीप, हे जमुना तट निवासी परोपकारी वृक्षो, तुम्हारा जन्म तो केवल परामर्थ के लिए ही हुआ है। देखो दयालुओ, श्री कृष्ण के बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है। हमको भटकते-भटकते सारी रात बीत चली है। हम शक्तिहीन हो गई हैं। कृपा करके उनका मार्ग बताओ। वह किस मार्ग से गये हैं।

किं ते कृतं क्षिति तपो,
बत केशवांङ्घ्रि।
स्पर्शोत्सवोत्पुलकितांग,
रुहैर्विभासि ॥५९॥

कुछ देवियां तो पृथ्वी की बड़ाई करने लगीं। बहिन, इस पृथ्वी ने कौन सा तप किया है। यह तो इन वृक्षों से भी अधिक भाग्यशालिनी है। इसको तो सदा केशव भगवान का चरण स्पर्श मिलता है। और इसी से यह इतनी हर्षित है। इसका रोम-रोम आनन्द में खिल रहा है। सखियो, यह तृणलता आदि से रोमांच प्रकट कर रही है। इसका उल्लास श्री कृष्ण के चरण स्पर्श के ही कारण है। हे पृथ्वी, वामनावतार में तुमको ही अपने चरणों से श्यामसुन्दर ने नापा है। वराह रूप में भी तुम्हारा अंग संग हुआ है। यही कारण है। तुम्हारी प्रसन्नता का। उस समय एक व्रज सुन्दरी उन विशाल जुगादी वृक्षों के भूमि की ओर झुकाव को देखकर कहने लगी। हे तरुवरो, श्यामसुन्दर की तुलसी की माला में ऐसी सुगन्ध हैं

कि उसकी गन्ध के लोभी मतवारे भौंरे प्रत्येक क्षण उस पर मडराते ही रहते हैं। देखो उनके एक हाथ में तो लीला कमल है। और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसी राधा के कन्धे पर रक्खा होगा। वह हमारे श्यामसुन्दर इधर से ही निकल कर गये हैं। और तुम सबने प्रणाम किया है, इसीलिये झुक रहे हो और श्याम ने भी तुम्हारी वन्दना का स्वागत किया है। इसलिये तुम सब इतने प्रसन्न चित्त हो रहे हो। अब आप जल्दी बताओ, श्यामसुन्दर किस मार्ग से गये हैं। उसी समय एक सखी कहने लगी--देखो यह वन लता वृक्षों को भुजपाश में बांध कर आलिगन कर रही है। दूसरी ने कहा—इससे क्या, देखो इनके शरीर में जो पुलक है, रोमांच हैं। यह तो श्याम सुन्दर के नख स्पर्श से हो रही है।

इत्युन्मत्त वचो गोप्यः, कृष्णान्वेषण कातराः।
लीला भगवत स्तास्ता, ह्यनु चक्रु स्तदात्मिकाः ॥६०॥

भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र के ढूढ़ने में गोपियों को कैसा परिश्रम हो रहा है। व्याकुल होकर श्री यमुना किनारे पर आकर बैठ गईं। अब कोई साधन नहीं रहा। श्री यमुना की लहरों को देख रही हैं। उस समय एक सुन्दरी ने कहा—बहिन, यह यमुना बड़ी प्रफुल्लित हो रही है। श्यामसुन्दर के दर्शन से इसका मन आल्हादित हो रहा है। देखो, इसका हृदय कैसी हिलोर ले रहा है और बहिन, यह बड़ी उदारमना भी है। यह दाता दुखियाओं के दुःख हरण करने वाली है। यह श्री कृष्ण की प्रेमिन है। इसका अवतार प्राणीन के उद्धार के लिए हुआ है। एक सखि ने एक वार्ता सुनाई। देखो, एक समय यमराज बहिन यमुना के घर आये थे। यमुना ने भाई

का बड़ा सन्मान किया। तब यमराज बोले--बहिन, मैं तुझसे प्रसन्न हूँ, मांगले आज जो तेरी इच्छा हो सो। यमुना ने कहा—भैया, जो कोई मुझमें स्नान करे वह कभी नरकों में न जाय।

इतना सुन कर यमराज बोले बहिन तैने तो मुझे नष्ट करने का वरदान मांगा है। तैने यह भी नहीं सोचा कि इससे तो भैया का नाम मिट जायगा। तब यमुना ने कहा—अच्छा तो भैया, कार्तिक शुक्ला २ में मध्याह्न के समय जो स्नान करे वह यमलोक में न जाय। यमराज ने कहा—अस्तु। तभी से यमद्वितीया का स्नान प्रसिद्ध है। गोपी ने कहा—बहिन, देखा यमुना का परोपकार, इससे अधिक और कौन परोपकारी हो सकता है। यह हमको श्री कृष्ण का पता जरूर बतायेगी।

इस प्रकार बात करती वह देवियां यमुना किनारे पहुंच गईं।

हे यमुने, हे भानुनन्दनी; हे कृष्णप्रिया, हे गोलोक वासिनी, हे दीनजनोद्धारिणी, श्री कृष्ण कहीं देखे होंय तो बताय दें। पर यमुना ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपनी मत्त चाल से चलती ही रही।

तब एक गोपी बोली—बहिन, यह नहीं बतायेगी, कारण यह भी तो हमसे सौत का भाव रखती है। हाँ, बहिन जो अपने भाई की सगी नहीं, वह दूसरों का क्या उपकार करेगी। अब गोपियों ने श्री कृष्ण प्राप्ति का अन्तिम साधन सोचा कि—

लीला भगवतस्तास्ता,

ह्यनु चक्रुस्तदात्मिकाः ॥६१॥

प्रियानुकरण ही लीला कहलाता है। अपने प्रियतम का अनुकरण ही लीला है। रासलीला आपने देखी ही है।

कस्याश्चित्पूतनायन्त्या,
कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम्।
तोकायित्वा रुदत्यन्या,
पदाहञ्छकटायतीम् ॥६२॥

एक गोपी पूतना बन कर आई, एक गोपी कृष्ण रूप बनी, वह पूतना लीला का अनुकरण कर रही है। अब तृणावर्त लीला कर रही हैं। जिस प्रकार व्रज में वकासुर आया, उसका प्रभु ने वध किया था, उसका अनुकरण कर रही हैं। चार गोपी चद्दर तान कर खड़ी हो गईं। एक गोपी कृष्ण रूप से कहती हैं—अरे, व्रजवासियों, अब तुम बात वर्षा से मत डरो। मैंने यह छत्र लगा दिया है. यह गोवर्धन लीला है।

अब उलूखल बन्धन लीला का अनुकरण करने लगीं। यह गोपियाँ इतनी व्याकुल हो रही हैं कि इनको आगे पीछे की लीलाओं का भी ध्यान नहीं है। गोपियों को इस लीलानुकरण का फल जल्दी ही मिल गया।

पदानि व्यक्तमेतानि,
नन्द सूनोर्महात्मनः।
लक्ष्यन्ते हिध्वजाम्भोज,
वज्रांकुश यवादिभिः ॥६३॥

एक गोपी कहने लगी—अरी बहिन, देखो, देखो यह नन्द-सूनु के चरण चिन्ह हैं, वह यहीं कहीं छिप रहे हैं। ध्वजा-कमल

वज्र—अंकुश-यव यह सब श्री कृष्ण के ही चरण चिन्हों में विराजमान हैं। एक गोपी ने कहा—बहिन, यह राधाजो के चरण चिन्ह हैं। वह दोनों साथ-साथ ही हैं। अब जल्दी मिल जायेंगे।

अरे मनश्चिन्तय राधिकाया,
वामे पदांगुष्ठ तले यवादि।
प्रदेशिनी सन्धित ऊर्ध्वरेखा,
माकुंचितामा चरणार्धमेव ॥६४॥

इस प्रकार श्री राधारानी के भी चरण चिन्हों का वर्णन किया है।

सखीजन चरण चिन्हों को देख रही हैं। साथ-साथ राधाजी के चरण चिन्हों को देख कर तो उनको बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

अनयाऽराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥६५॥

यह निश्चित है कि इस गोपी ने भगवान ईश्वर हरि की आराधना की है। इसलिये भगवान् हम सबको छोड़ कर इसे एकान्त में ले गये हैं। रास महोत्सव के समय गोपियाँ चार यूथों में बटी हुई थीं। जैसे—स्वपक्षीय, प्रतिपक्षीय, तटस्थ पक्षीय सुहृद् पक्षीय।

आसां चतुर्विधा भेदः
सर्वासां व्रज सुभ्रावां
सा स्वपक्षः सुहृत्पक्षः
तदस्थः प्रति पक्षकः ॥६६॥

अनयाऽराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः। यह पद स्वपक्षीय गोपियों द्वारा कहा गया है और यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतोयामनयद्रहः। यह पद विपक्षीय गोपियों का कहा हुआ है।

वस्तुतः भगवान में सबके एक से ही भाव हैं। इस श्लोक में भी कृष्ण के लिये तीन शब्दों में प्रयोग किया है। प्रथम भगवान यह नाम षडैश्वर्य सम्पन्नता को व्यक्त करता है। दूसरा हरि—इसका आशय है श्री कृष्ण समस्त दुःखों का हरण करने की शक्ति रखते हैं। तीसरा ईश्वर—इससे प्रतीत होता है कि श्री कृष्ण भक्तों की रक्षा के लिये समर्थ है। चौथा नाम इसमें गोविन्द आता है जो सर्वोपरि है।

गां विन्दतीति गोविन्दः प्राप्त काम धैन्वैश्वर्यः। यथा :—

गोविन्दो नाम विख्यातो।
वैयाकरण देवता॥
गां परां विन्दते यस्मात्।
गोविन्दो नाम वै हरिः॥६७॥

गोविन्द नाम की अद्भुत महिमा है। सबसे प्यारा नाम है। इसका अर्थ है प्राप्त काम धैन्वैश्वर्यः जिनके पास सदा कामधेनु रहती है। एक व्रजसुन्दरी ने कहा—सखि, यदि गोविन्द एक सखि को अपने साथ ले गये हैं तो क्या हुआ। गोविन्द के पास रक्खा ही क्या है जो उस गोपी को दे देंगे। दूसरी सखि ने कहा—बहिन, उनके पास सदा कामधेनु रहती है। जो सब कुछ दे सकते हैं। देख प्रत्यक्ष में उस गोपी को वृन्दावन का आधिपत्य दे दिया है।

वृन्दावनाधिपत्यं तु दत्तं तस्यै प्रतुष्यता।
कृष्णेनान्यत्र देवीति राधा वृन्दावने वने॥६८॥

यह क्या श्यामसुन्दर की कम कृपा है जो राधा को वृन्दावनाधीश्वरी बना दिया है। राधा के अनेक नाम है पर वृन्दावन में तो राधा ही राधा है।

देवकी मथुरायां पाताले परमेश्वरी :
चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्य निवासिनी ॥६९॥

वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे ।
रुक्मिणी द्वारवत्यांतु राधा वृन्दावने वने ॥७०॥

सखि—मथुरा में इसका देवकी नाम है। पाताल में इसका परमेश्वरी नाम है। चित्रकट में इसका सीता नाम है। विन्ध्याचल में इसे विन्ध्य निवासिनी कहते हैं। वाराणसी में इनका विशालाक्षी नाम है। पुरुषोत्तम तीर्थ में इसको विमला कहते हैं। और द्वारका में रुक्मिणी कहते हैं। पर वृन्दावन में तो इनको राधा ही कहते हैं।

अब यहाँ शंका होती है कि वृन्दावन में कितना बड़ा प्रभाव है। राधाजी का पर भागवत कारने तो उनका स्पष्ट नाम तक नहीं लिखा। इसका क्या कारण हो सकता है जब नाम ही नहीं तब तो उनका रास में होना ही सम्भव नहीं।

ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए। हम पहिले ही समाधान कर चुके हैं। और भी सुनिये, जहाँ श्री कृष्ण हैं वहाँ राधा है तथा जहाँ राधा है वहाँ श्री कृष्ण हैं।

आनन्द धाम श्री कृष्ण एवं उनकी आह्लादिनी शक्ति राधा अभिन्न हैं और एक ही हैं। श्री कृष्ण राधा स्वरूप हैं और राधा कृष्ण स्वरूप है। किसी भी समय, किसी भी देश में, किसी भी निमित्त से, किसी भी रूप में, किसी भी अवस्था

में, राधाकृष्ण का पार्थिक्य सम्भव नहीं है। एक ही वस्तु के दो नाम हैं। एक ही अर्थ के दो शब्द है। श्री कृष्ण की लीला राधा की लीला एवं राधा की लीला श्री कृष्ण की लीला है। श्रीमद्भागवत में राधा नहीं है या उनका नाम नहीं है। ऐसा कहना सर्वथा असंगत है।

भगवान श्री कृष्ण सच्चिानन्द स्वरूप हैं उनकी सत् शक्ति से कर्मलीला और चित् शक्ति से ज्ञान लीला तथा आनन्द शक्ति से विहार लीला सम्पन्न होती हैं।

आनन्द प्रधान विहार लीला का जहाँ वर्णन हो। वहाँ श्री राधा लीला का वर्णन न हो। यह असंगत है।

ग्रन्थराज में अनेक स्थलों में श्री राधाजी का वर्णन किया है। जैसे (आत्मारामोऽप्यरीमत्) आत्मा शब्द से राधा ही हैं।

आत्मातु राधिका तस्य ।
तयैव रमणादसौ ॥
आत्माराम इति प्रोक्तो ।
ऋषिभिर्गूढ वेदिभिः ॥७१॥

हमारे महाप्रभु का नाम आत्माराम है। आत्मा श्री राधाजी हैं। उनमें रमण करने वाले आत्मा राम इसीलिए आपको राधारमण लाल जी कहते हैं। रसिक शिरोमणि रस राज श्री कृष्ण जब अवतार धारण करते हैं। तब राधा जी के साथ ही अवतार धारण करते हैं। तथा भ्रातृवत्सल बलराम को भो साथ लाते हैं वृहद्वौत्तमीय के आधार पर। बलदेवजी के प्रति श्री कृष्ण के वचन हैं।

सत्वं तत्वं पर त्वं च तत्वत्रयमहं किल ।
त्रितत्व रूपिणी सापि राधिका ममवल्लभा ॥७२॥

अरे भैया बलदेव, सत्व तत्व त्रितत्व यह तत्वत्रय मैं हूँ। इसी प्रकार तत्वत्रय रूपा राधा है।

प्रकृतेः पर एवाहं सापि मच्छक्ति रूपिणी ।
सान्विकं रूपमास्थाय पूर्णोऽहं ब्रह्मचित्परः ॥७३॥

प्रकृति से पर मैं हूँ और राधिका मेरी शक्ति रूपा है। सात्विक रूप में स्थित होकर पूर्ण ब्रह्म चैतन्य पर मैं हूँ।

ब्रह्मणः प्रार्थितः सम्यग् सम्भवामि युगे युगे ।
तया सार्धं त्वया सार्धं नाशाय देवताद्रुहाम् ॥७४॥

जब-जब ब्रह्मा जी प्रार्थना करते हैं। तब-तब युग-युग में, मैं अवतार लेता हूँ। उस समय भैया, मैं राधा के साथ तथा आपके साथ ही अवतार लेता हूँ। प्रयोजन यह है कि उन देवताओं के द्रोही असुरों के मारने के लिए। यह वचन सिद्ध करता है कि प्रभु राधा के बिना अवतार नहीं लेते। इसलिये ऐसा तो कोई कह नहीं सकता कि रास में राधाजी नहीं हैं। अब प्रश्न उठता है उनके स्पष्ट नाम को जिसका समाधान हम पहिले ही कर चुके हैं।

भगवान वेद व्यास तथा शुकदेवजी अत्यन्त ज्ञान सम्पन्न थे। आपकी बुद्धि अगाध थी। वह किस उद्देश्य से क्या कह रहे हैं तथा कौन सा काम कर रहे हैं। यह तो वे ही जान सकते हैं। या उनके कृपा पात्र ही जान सकते हैं। दूसरा कौन समझ सकता है। इन रहस्य की बातों को। हाँ यही हो सकता है कि आपको उनकी प्रत्यक्ष लीलाओं के दर्शन हो रहे हैं। इसलिए नाम लेना सम्भव नहीं समझा। (अनयाऽराधितोनूनम्) इस श्लोक में भी आंगुल्य निर्देश है। राधा जी उनको प्रत्यक्ष दीख रही है। इसीलिए कहा है यह

जो कृष्ण के साथ जा रही है इसने निश्चय हरि का पूजन किया है। शुकदेवजी महाराज राधारानी के महल में लीलाशुक (तोता) के रूप में रहते थे। और उनकी लीलाओं में ही मुग्ध रहते थे। श्रीजी के अनन्य लीला प्रेमी वक्ता थे। और परीक्षित भी वैसा ही अनन्य प्रेमी श्रोता था। दोनों ही भाव में मग्न थे।

श्री राधाजी का नाम तारक का भी तारक है। श्री कृष्ण नाम से भी अधिक गोपनीय है। कारण राधा नाम भगवान श्री कृष्ण के जीवन का आधार है और आत्मा है।

एक दिन नारद जी पार्वती से एकान्त में बोले—देवि, यह तुम्हारे स्वामी शङ्कर भगवान अमर विद्या जानते हैं। जिससे यह अमर हैं। और तुमको एक दिन यह मृत्यु सतायेगी। अतः आप उनसे अमर विद्या क्यों नहीं सीखती हो। यह सुन कर पार्वती जी ने एक दिन शंकर जी से प्रार्थना की स्वामी—आप अपनी अमर विद्या सिखाइये। पर शङ्कर जी ने स्वीकृति नहीं दी। इस पर पार्वती जी हठ करने लगी। स्वामी मैं तो अन्न जल जब ग्रहण करूँगी। जब आप अपनी अमर विद्या सुनायेंगे। पार्वती जी के हठाग्रह को देख कर भोलानाथ ने एकान्त में बैठ कर अपनी अमर विद्या सती जी को सुनाई। पार्वती तो उस विद्या को सुनते-सुनते सो गई। पर वहाँ सद्यो जात एक पक्षी उस विद्या को सुन कर अमर हो गया। जब वह पक्षी वहां से उठने लगा। तब उसके पंखों को फड़फड़ाहट से शंकर जी के नेत्र खुल गये। उनने देखा एक पक्षी उनके अमर ज्ञान को लेकर उड़ रहा है। उस समय शङ्कर जी ने उसका पीछा किया तथा अपना शूल लेकर उस चोर के मारने को चल

दिये। ऐसी अवस्था में वह ज्ञानी पक्षी सूक्ष्म रूप धारण करके व्यास जी के घर में घुस गया और उनकी पत्नी के गर्भ में छिप कर बैठ गया था।

भगवान शंकर ने व्यास जी से कहा—व्यास जी एक चोर हमारे अमर ज्ञान को चुराकर आपके घर में घुस गया है। मैं उस चोर को मारे बिना नहीं रहूँगा। कारण वह मेरी अमर विद्या को अनधिकारियों को सुनायेगा।

व्यास जी हँस कर बोले प्रभु इसीलिए लोग आपको भोला-नाथ कहते हैं। जब अमर विद्या उसको मिल गई है। तब आप कैसे मार सकेंगे। वहाँ इस ज्ञानी शुक बालक का जन्म हुआ। इस वृत्तान्त से शुकदेवजी पूर्ण अवगत थे। मुझे जो ज्ञान प्राप्त हुआ है इसको और भी लोग चुरा सकते हैं। इस लिये आप पूरा राधा नाम ही उच्चारण नहीं करते थे। केवल रा-रा-रा ही कहा करते थे। जिससे कोई चोरी ही न कर सके।

ऐसी गोपनीय वस्तु को आप कैसे किसी को बता सकते हैं। हो सकता है इसीलिये आपने राधा नाम का उच्चारण नहीं किया।

वास्तव में राधा नाम ही भागवत का सार है।

(राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका विभ्राजन्ते जनेश्वा) अस्याः श्रुतेश्चायमर्थः—राधयति वशी करोति कृष्णमिति राधा। यद्वा—राध्यते आराध्यते श्री कृष्णेनेति राधा। यद्वा—राधयति साधयति सर्व कार्य स्व भक्तानामिति

राधा। यद्वा-राधयति आराधयति कृष्ण मिति राधा तया राधया सह माधवः श्री कृष्णो देवः सन् विभ्राजते दीव्यति नित्यं क्रीडति तथा स नित्य विहारी इत्यर्थः।

(अनयाऽराधितो नूनम्) इसी में सब कुछ बता दिया है।

माधव नाम भी श्री कृष्ण जी का राधा नाम से पड़ा है। मा नाम राधा उनके धव नाम पति उनको माधव कहते हैं। माधव के माधवपन में राधा ही कारण है। प्रजा के कारण ही प्रजापति कहलाता है। जैसे जटाओं से ही तपस्वी कहलाता उसी प्रकार राधा से ही माधव का माधवपना ज्ञात होता है। राधया माधवो देवः। हेतौ तृतीया वैयाकरणियों के मत से फल की सिद्धि करने के योग्य पदार्थ को हेतु कहते हैं।

श्री राधा के साथ ही माधव देव सेवनीय है। बिना राधा के श्री कृष्ण की सेवा में दोष लगता है। इसलिये राधा कृष्ण ही सेवनीय है। सम्मोहन तन्त्र में लिखा है कि :—

गौर तेजो बिना यस्तु श्याम तेजः समर्च्चयेत्।
जयेद्वाध्यायते वापि सभवेत् पातकी शिवे ॥७१॥

गौर तेज के बिना श्याम तेज की पूजा कैसे की जाय। जहाँ राधा वहाँ श्री कृष्ण। (तस्मा ज्योतिरभूद्द्वेधा राधा माधव रूपकम्) भगवान में एक भक्त वात्सल्य ऐसा प्रबल है कि एक ही ज्योति राधा माधव रूप से प्रगट हुई है।

(अथर्ववेदे राधातपिन्यपि)

येयं राधा यस्य कृष्णो रसाब्धि।
र्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत् ॥७३॥

श्री राधा और कृष्ण यह प्रेम सागर है तथा एक देह है क्रीणा करने को दो देह धारण किये हैं। तदुक्तं माचार्यैः।

विना कृष्णं राधा व्यथयति समन्तान्मम मनो ।
विना राधा कृष्णोऽप्यहह सखि मां विक्ल वयति ॥
जनिः सा मे माभूत क्षणदपि न यत्र क्षण दुहौ ।
युगेनाक्ष्णोर्लीह्याम् युगपदनयो वक्र शशिनौ ॥७४॥

भक्तराज कहते हैं बिना राधा के कृष्ण नाम लेने में मेरे मन में व्यथा होती है। इसी प्रकार बिना कृष्ण के रा ा नाम लेने में मेरा हृदय दुःखी होता है। मेरा जन्म क्षण मात्र को भी ऐसे स्थान पर न हो जहाँ उत्सव पूरक राधा कृष्ण न हों। मैं एक साथ ही दोनों का मुखचन्द्र अपने नेत्र युगल से आश्वादित करता रहूँ।

श्री राधाजी का सौभाग्यातिशय और सर्वोत्तमता आदि वाराह राधा कुण्ड के प्रसङ्ग में देखने को मिलता है।

यथा राधा प्रिया विष्णो स्तस्याः कुण्डं तथा प्रियं।
सर्व गोपीषु सैवेका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥७५॥

व्रजराज नन्दन को जैसी राधा प्यारी है। उसी प्रकार राधाकुण्ड भी प्यारा लगता है। तभी तो आपने गांव का नाम भी राधाकुण्ड रक्खा है। जहाँ राधाकुण्ड कृष्ण कुण्ड दोनों ही समान रूप से हैं। किन्तु यहाँ राधाजी का ही सौभाग्यातिशय दिखाया है। जो कि गाँव का नाम राधाकुण्ड ही प्रसिद्ध है। वृहद्गोतमीय तन्त्रे :—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता
सर्व लक्ष्मीमयी सर्व कान्तिः सम्मोहिनी
परा वराभयकरा ध्येया सेविता सर्व देवता ॥७६।

दीव्यतीति देवी क्रीड़ा करने वाली, कृष्णमयी कृष्ण में अनुराग करने वाली, पर देवता पर श्री कृष्ण उनकी देवता, अत्यन्त प्रीति का विषय श्री राधिका जी है। लक्ष्मी पद से रुक्मिण्यादि का एक राधिका ही आधार होने से सर्व लक्ष्मीमयी है तथा सब कान्तियों को मोहित करने वाली अतः सर्व कान्ति-मयी, सम्मोहिनी, दोनों हस्त कमलों से अपने परम भक्तों को वर एवं अभय देने वाली सब देवताओं से ध्यान करने योग्य पराशक्ति राधिका जी ही सेवनीय हैं। इसलिये **राधा कृष्ण ही कहा जाता है।**

आदौ राधां समुच्चार्य कृष्णं पश्चाद्वदेद्बुधः
व्यतिक्रमे ब्रह्म हत्यां लभते नात्र संशयः ॥७७॥

प्रथम राधा का नाम उच्चारण करना पीछे कृष्ण नाम कहना। अन्यथा ब्रह्म हत्या जैसे दोष का भागी बनता है।

जगन्माता च प्रकृति पुरुषश्च जगत्पिता ।
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः ॥७८॥

जगन्माता प्रकृति कहलाती हैं तथा पुरुष जगत्पिता कहलाता है। किन्तु संसार में माता-पिता से शतगुणी श्रेष्ठ होती है। इसलिए माता को पहिले स्मरण किया जाता है।

राधा कृष्णेति गौरी शेत्येवं शब्दः श्रुतौ श्रुतः।
कृष्ण राधेश गौरीति लोके न च कदावन ॥७९॥

सर्वत्र राधा कृष्ण गौरीशंकर ही कहा जाता है। कृष्ण राधा यां ईश गौरी कोई नहीं कहता। राधा कहने से ही कृष्ण स्वयं आ जाते हैं।

रा शब्दोच्चारणा देव स्फीतो भवति माधवः।
धा शब्दोच्चारतः पश्चाद्धावत्येव न संशयः ॥८०॥

'रा' शब्द के कहते ही माधव दयार्द्र हो जाते हैं और 'धा' के उच्चारण करते ही माधव भक्तों के पीछे-पीछे चले आते हैं। यह है 'राधा' नाम का प्रभाव।

अनयाऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः

इस श्लोक में ही हमारे आचार्य वर्य राधा नाम का इस प्रकार दर्शन कराते हैं। हे अनया अति महीयस्या तया सह वृथैव साम्याहंकारादनीति मत्यः नूनं हरिरयं राधितः राधामितः प्राप्तः शकन्धादित्वात्पर रूपम् अनेन राधयात्याराधयतीति राधेति नाम करणत्वं दर्शितम्।

इस प्रकार सात श्लोक 'राधा' नाम के मुझे प्राप्त हुए हैं। गोपियाँ कह रही हैं कि राधा ने ही सच्ची आराधना की है। जो श्यामसुन्दर इसको ही एकान्त स्थान में ले गये हैं। इसकी कोई बड़ी साधना है। सर्वेश्वर महाप्रभु की प्राप्ति की आराधना प्रणाली यही एक गोपी जानती है।

गोपियाँ उन चरण चिन्हों को देखती आगे श्री श्यामसुन्दर की देखने चल दी।

इस प्रकार की व्याख्या रासपंचाध्यायी के प्रत्येक श्लोकों पर संग्रह किया है। उसका प्रकाशन कोई भगवान का प्यारा ही करा सकता है।

प्रसंग यह चल रहा है कि व्रज देवियाँ राधा कृष्ण के चरण चिन्हों को देखती हुई। उनके दर्शनों की लालसा से आगे बढ़ रही हैं उस समय एक किशोरी ने कहा :—

तस्या अमूनि नः क्षोभं,
कुर्वन्त्युच्चैः पदानियत् ।
यैकापहृत्य गोपीना,
रहो भुक्तेच्युताधरम् ॥८१॥

एक गोपी ने कहा—बहिन, इस गोप रमणी के चरण

चिन्ह हमको अत्यधिक क्षोभ उत्पन्न कर रहे हैं यह गोपी गोविन्द को कहीं एकान्त में ले जाकर उनके अधरामृत का पान कर रही है।

शृङ्गार रस का स्वभाव है परस्पर वैयक्ष होना। चन्द्रावलि श्री राधाजी के सौन्दर्य को देख कर लजाती थी, उनका मन उदास हो जाता था, उस समय उनकी प्रधान सखी पद्मा भी लज्जित हो जाती थी जो कि सदा चन्द्रावलि का गौरव बढ़ाना चाहती थी।

व्रपते विलोक्य पद्मा ललिते राधां विनाप्यलंकारं।
तदलं मणिमय मंडल मन्डन रचना प्रयासेन ॥८२॥

पद्माजी कहती थी कि राधा का सौन्दर्य तो बिना अलंकार के ही बिखर रहा है। यदि इसका शृङ्गार कर दिया जाय तब तो कहना ही क्या है। हाय मेरी सखि चन्द्रावलि का ऐसा सौन्दर्य नहीं है पर पद्माजी बड़ी धैर्य धराने वाली थीं वह अपनी चन्द्रावलि को इस प्रकार धैर्य धराती थी।

मा चन्द्रावलि मलिना भव,
राधाया समीक्ष सौभाग्यं।
ज्योतिर्विदोऽपि विद्युः,
कृष्णे किलवलवती तारा ॥८३॥

हे चन्द्रावलि तू श्री राधा के परम सौभाग्य को देख कर अपना मन मलीन मत करे। देख ज्योतिषियों ने भी कहा है— कृष्ण पक्ष में तारा बलवान हो जाती है। इसी प्रकार इस राधा तारा का भी श्री कृष्ण पर प्रभाव पड़ रहा है।

व्रज में गोपियों के दो यूथ रहते थे। एक राधा रानी का

यूथ, जिनकी प्रधान सखि ललिता थी। दूसरा चन्द्रावलि का यूथ इनकी यूथपा पद्मा थो । दोनों ही यूथ की गोपियां श्यामसुन्दर से स्नेह करती थीं। पर उनमें थोड़ा सा अन्तर था कारण स्नेह दो प्रकार का होता है। एक शुद्ध घृत स्नेह तथा दूसरा शुद्ध मधु स्नेह।

अनन्त कोटि गोपीषु यायाः शुद्धघृतस्नेहवत्यः तासु एकैव चन्द्रावलिमुख्याः अन्यास्तत्सख्यः पद्मादयः तासु एव श्री राधा ललितादीनां द्वेषो नान्यत्र सर्वथा भाव वैजात्याभावात्।

एवं चन्द्रावली पद्मादीनां शुद्धमधुस्नेहवतीषु श्री राधा ललितादिषु एव नान्यत्र।

तात्पर्य यह है चन्द्रावली का शुद्ध घृत स्नेह था और श्री राधाजो का शुद्ध मधु स्नेह था इन दोनों यूथों में परस्पर वैपक्ष था। व्रज के दोनों यूथों का स्नेह घृत स्नेह एवं मधु स्नेह दोनों एक से एक बढ़ कर थे। यथा :—

तन्मदीयामयो घृत स्नेहः इति भावनामयः

श्री कृष्ण मेरे हैं यह भावनामय शुद्ध घृत स्नेह कहलाता है। जो कि चन्द्रावली के यूथ का माननीय था। तदीयामयो भावः मधु स्नेहः श्री कृष्ण की मैं हूँ। इस भावना का स्नेह शुद्ध मधु स्नेह कहलाता है। जो कि श्री राधाजी के यूथ का माननीय था। (यह उज्वल नीलमणि के भाव हैं)। श्री कृष्ण मेरे हैं यहाँ थोड़ा अहं भाव आ जाता है और श्री कृष्ण की मैं हूँ यहाँ दास भाव प्रतीत होता है।

यह सब देवियां श्यामसुन्दर से स्नेह करती थीं। असंख्य

गोपियां थीं ! और उनके अनन्त भाव थे, पर सबका श्री कृष्ण चन्द्र से अनन्य प्रेम था। इस वियोगावस्था में सब एक होकर अपने कान्त को ढूँढ़ रही हैं।

देवियां उन चरण चिन्हों के सहारे एक निकुंज के समीप पहुंच गईं। किन्तु यहाँ तो एक और ही आश्चर्य देखा कि केवल श्री बिहारी जी के चरण चिन्ह तो दीख रहे हैं। श्री विहारिन जी के चरणों के दर्शन नहीं हो रहे। उस समय प्रमुखा सखि ने कहा। व्रज रानियों मुझे तो ऐसा आभास हो रहा है कि श्यामसुन्दर ने अपनी श्यामा को कन्धे पर बैठाया है (इसी से श्यामसुन्दर के चरण इस रज में दब रहे हैं। चलो आगे चलो। एक सखि ने कहा—बहिन, यहाँ तो श्यामसुन्दर के आधे-आधे पंजे दीख रहे हैं। यह क्या कारण है। प्रमुखा ने बताया—यहाँ श्यामसुन्दर ने उचक कर फूल तोड़े हैं ऐसा ज्ञान होता है। हमारे श्यामसुन्दर वेणी गुथना अच्छा जानते हैं। सर्वेश्वरी राधा के केश बन्धन के लिए आपने पुष्प चयन किये हैं। सखि वह सर्व गुण सम्पन्न है।

अब तो सखियां एक निकुंज के द्वार पर पहुंच गईं।

इसी निकुंज में श्यामसुन्दर छिप रहे थे। गोपियों का जो कोलाहल सुना सोई प्रभु प्रियाजी का हाथ पकड़ कर भागने लगे। राधाजी के केशों से फूल बिखर रहे हैं, वह श्यामसुन्दर के साथ दौड़ी जा रही हैं। गोप देवियां निकुंज में आकर वहाँ की शोभा देख कर आश्चर्य में पड़ गई और कहने लगीं।

केश प्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥८४॥

अरी बहिन, यहां तो श्यामसुन्दर ने कामिनी राधा के केश सम्भाले हैं देखो, इस चौकी पर प्रभु बेठे हैं और प्रियाजी नीचे बैठी हैं, सामने यह दर्पण रक्खा है, इसमें प्रिया का मुखकमल दीखता रहे। यह फूलों के गुच्छे, यह टूटे हुए फूल, यह अन्य शृङ्गार सामिग्री, इसका प्रमाण है अब श्यामसुन्दर कहीं आस-पास में ही मिल जायेंगे।

आगे चलकर श्री वृषभानु राजदुलारी राधा मान करके बैठ गई और कहने लगीं—श्यामसुन्दर, अब मेरी शक्ति आगे चलने की नहीं है। श्यामसुन्दर कह रहे हैं—राधे, यह मान करने का समय नहीं है। जल्दी चलो, देखो, गोपियां पास में ही आ रही हैं। राधाजी कह रही हैं--

ततो गत्वा वनो द्देशं।
दृप्ता केशव मप्रवीत्।
न पारपेऽहं चलितुं।
नय मां यत्र ते मनः ।।८५।।

प्रभु अब मैं एक पैर भी नहीं चल सकती। आपको तो गोचारण में चलने का अभ्यास है। हम तो कभी अपनी हवेली से बाहर नहीं निकली। देखो, मेरे पैर की अँगुलियों में कांटे छिद रहे हैं, पांयन में छाले पड़ गये हैं, अब नहीं चला जाता। जैसे आप समझो वैसे मुझे ले चलो। राधा का मान देख कर वह गर्वापहारी भगवान बोले--प्रिये देखो गोपियां आ गईं; आओ, मैं तुमको कन्धा पर बैठा कर ले चलूंगा। जैसे ही प्रियाजी ने कन्धे पर चढ़ने को पैर ऊँचा किया कि श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये। और प्रियाजी भूमि में गिर पड़ीं। उसी समय गोपियां आ गईं और कहने लगीं—बहिन, देखो यह सामने बिजली चमक रही है या सोने की लता है या कोई अवला है।

यहाँ एक शंका होती है कि श्री राधा तो प्रभु को सबसे अधिक प्यारी है उसको प्रभु ने कैसे जंगल में छोड़ दिया। और राधाजी ने भी आज इतना मान क्यों दिखाया। इसका समाधान यह है कि राधाजी ने तो यह सोचा था कि मेरी सखियां रात्रि में भटक रही हैं, कष्ट पा रही हैं। मैं मान करके बैठ जाऊँगी। तब सबका यहाँ मिलान हो जायगा।

श्री कृष्णजी ने यह सोचा कि यदि हम दोनों यहाँ एक साथ मिलेंगे तो गोपियाँ राधा को दोष देंगी कि यही श्री कृष्ण को ले आई है। मैं इनको भी छोड़ दूँगा तब कहेंगी वह कृष्ण किसी का सगा नहीं है वह बड़ा निर्मोही है। यह कारण राधाजी के छोड़ने का है। श्यामसुन्दर ने एक ओर प्रिया का गर्व दूर किया दूसरी और प्रिया का दोष दूर किया।

ब्रज किशोरीगण राधारानी को सावधान कर रही हैं। कोई जल लेकर आई कोई पुष्प लेकर आई और कोई पंखा से वयार कर रही है जब ब्रजराज रानी की मूर्च्छा दूर हुई तब वह बड़ी करुणा पूर्वक रोने लगीं।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥८६॥

हा नाथ--रक्षा करने वाले। रमणप्रेष्ठ सुख देने वाले। महाभुज--आपकी भुजाओं से ही प्राण रक्षा सम्भव है, सखे--सखा भाव सर्वोपरि है। हम तो आपकी दासी हैं तथा अत्यन्त कृपणा दुखिया हैं हमको जल्दी दर्शन दो।

हा नाथ हा रमणवर्य दयैक सिन्धो,
क्वासि प्रिय प्रकट यस्य विलोकनं मे।
आवेदिभ यद्यपि भवन्तमिहैव सन्तं,
दूरे दृशोरित तथाप्यसुभिर्दुनोति ॥८७॥

हा नाथ ! हा रमणवर्य, हा दया के सागर आप कहाँ हो; आप कहाँ हो। हे प्रिय मैं जानती हूँ आप मुझे छोड़ कर कहीं दूर नहीं जायेंगे। पर प्रियतम यह आपके वियोग की अग्नि के धूँआ से मेरी दृष्टि ही धूंधली हो गई है इससे आपके दर्शन नहीं हो रहे हैं। हे प्रियतम, अब आप जल्दी दर्शन दो। वियोग में हे नाथ के स्थान पर बार-बार हा नाथ ! हा प्रिय ! हा करुणा के सागर ! ऐसे ही शब्द निकल रहे हैं यह अति खेद के द्योतक हैं। हे प्रियतम, अब यह प्राण देह से सब सम्बन्ध छोड़ चुके हैं। जब तक यह शरीर से पृथक न हो उसके पहिले मुझे दर्शन दीजिये। यह प्राण अब आपके दर्शनों की इच्छा से ही रुक रहे हैं।

श्यामसुन्दर क्या मुझसे कोई अपराध बन गया है :—

नैवापराद्धंमिह किंचिद् गर्व हेतो ।
नैंवेहितं चम इदं हृषितोसियेन ।
तासां समागमन मूल विलंम्वहेतो,
नों पारयेच्चलितुमित्य वदं न गर्वात् ॥८८॥

राजाधिराज मैंने तो कोई आपका ऐसा अपराध कभी नहीं किया। जो आप रुष्ट होकर मुझे ऐसी रात्रि में इस घोर वन में अकेली छोड़ कर चले गये।

हां, इतना तो मैंने आपसे अवश्य कहा था कि(न पारयेहं चलितुं नयमां यत्र ते मनः) मुझसे अब चला नहीं जाता आप जैसे समझें वैसे मुझे ले चलें। श्यामसुन्दर, यह बात भी मैंने गर्व में आकर नहीं कही, यह तो मैंने इसलिये कही कि मेरी सखि आपके वियोग से दुःखी मारी-मारी फिर रही हैं। मैं

बैठ जाऊँगी तो सबका यहाँ मिलन हो जायगा। मैंने गर्व में ऐसी कोई बात नहीं कही। इतना कहते-कहते प्रियाजी फिर कहने लगीं।

धिक् यामिनी न रमते यदि यामनीशो,
धिक् पद्मनी न पश्यति पद्मनीशो।
धिक् जीवितं यदि विलेहति जीवतेशो,
भुक्तः प्रियेण हि गुणो गुणतामुपैति ॥८९॥

हे प्राणनाथ, जिस रात्रि में चन्द्रोदय नहीं होता उस रात्रि को धिक्कार है। बिना सूर्य के कमल को धिक्कार है। प्राण नाथ के बिना इस जीवन को धिक्कार है। हे प्राणनाथ, आप भोगो वही रात्री है और वही गुण हैं बाकी सब व्यर्थ है।

प्यारे, जैसी मैं हूँ वैसी आपकी। मेरे अवगुणों को हृदय से बिसार कर अब आप शीघ्र दर्शन देने की कृपा करो। आप कहाँ हो, आप कहाँ हो। ऐसा कहते ही मूर्च्छित हो गई। थोड़ी सी देर में ही कहने लगीं। अहो गन्ध, यह वनमाला की कहाँ से आ रही है। अहो स्पर्श: यह मेरे शिर पर किसका हाथ रक्खा है। अहो रूप, मैं यह क्या देख रही हूँ। श्यामसुन्दर आ गये। अहो, शब्द, यह मुरली की ध्वनि आ रही है। अहो रस, श्री कृष्ण के आगमन की बात सुन कर आप भी श्री कृष्ण कृष्ण कहने लगीं। यह है वियोग में स्वरूप रहित शब्दादि तन्मात्रा।

इस प्रकार इस तन्मय भाव में प्रियाजी का मनोभाव एक भक्त द्वारा :—

उरझी लट सुरझाय जारे मोहन
मेरे कर महदी लगी है

शिर सों साड़ी सरक गई मोहन
ताऊ ए नेक उढ़ाय जारे मोहन
भालकी वेंदी गिर गई प्यारे
ताकों नेक लगाय जारे मोहन
लीलाधर प्रभु गुण नहीं भूलोगी,
वीडीऊ और खवाय जारे मोहन,
लट उरझी सुरझाय जारे मोहन

बस इतना कहते-कहते आपको निद्रा आ गई एकदम अचेत अवस्था हो गई।

कुछ समय में जहाँ चेतना आई अरे मैं सो गई श्यामसुन्दर चले गये।

इस भाव का एक भक्त का वचन :—

नींद तोय बेचूँ जो कोई ग्राहक होय।
आये मोहन फिर गये अंगना मैं वेरिन गई सोय।
कहा कहूँ कछु बस नहीं मेरो पायो धन दियो खोय।
धोंधी के प्रभु फिर जो मिले हों राखोंगी नयन संजोय।

वस्तुतः वियोग में ऐसी ही दशा हो जाती है।

हे रास रस नृत्य में कुशल आप कहाँ हो। सखियों की जीवन रक्षा की औषधि सार आप कहाँ हो। हा विधाता, तुझे धिक्कार है यह बड़े खेद की बात है कैसा वियोग।

वृषभानु राजदुलारी की ऐसी अवस्था देखकर सखियों ने अपने अन्यान्य उपचारों से उनको सावधान कर लिया। तथा

सब बातें राधाजी से पूछी। राधाजी ने सभी बात उनको स्पष्ट बता दी यह सुन कर गोपियों को यह कहना पड़ा बहिन श्यामसुन्दर बड़े निर्मोही हैं। वह किसी के सगे नहीं हैं। एक सखि बोली—हां बहिन, उनने बलि का सर्वस्व हरण करके उसे पाताल में भगा दिया। एक ने कहा—हां बहिन, अपने स्वार्थ से वाली को मार डाला। तब एक गोपी ने कहा बहिन ऐसी बात नहीं है। श्यामसुन्दर तो सबका उपकार करते हैं। उनका दण्ड भी शिक्षाप्रद है। व्रजदेवियों ने अपने उपचारों से प्रियाजी को सावधान कर लिया उनको धैर्य धरा कर कहने लगी। राधे तू क्यों इतनी विमना हो रही है :—

केली कलासु कुशला नगरे मुरारे ।
आभीर पंकज दृशः कतिवान सन्ति ॥
राधेत्वयामहदकारि तयो यदेष ।
दामोदर त्वयि परं परमानुराग़ः ॥८८॥

सर्वेश्वर भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जल्दी ही कृपा करेंगे। कारण इस आभीर नगरी में केली कला में निपुण कितनी ही गोपियां है पर श्री राधे—श्री दामोदर का तेरे ही ऊपर विशेष अनुराग है। यह तेरी तपस्या का फल है।

हे वृषभानुनन्दनी राधे आप अपने मुख चन्द्र को इन मलीन नयनाम्बुज से मलिन मत करो। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र करुणा के सागर हैं वह शीघ्र ही करुणा करेंगे। उनके दर्शन जल्दी ही मिलेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है।

मलिनं नयनांजनाम्बुभि
र्मुखचन्द्रं करभोरु मा कुरु

करुणा वरुणा लयो हरि
स्त्वयि भूयः करुणां विधास्यति ॥८०॥

श्री राधा सर्वेश्वरी बोली हे सहचरी मैं क्या बताऊँ। मेरा मुख सूखता जा रहा है मेरी जंघा जड़ के समान होती जा रही है चलने की शक्ति नहीं है। हृदय बार-बार कांपता है। विरह की उष्णता के कारण कपोलों से पसीना झर रहे हैं।

शुष्यति मुख मूरु युगं पुष्पति जड़ता प्रवेपते हृदयं,
स्विद्यति कपोल पाली सखि वनमाली किमालोकि।

ऐसी अवस्था देख कर सहचरी उनको धैर्य धरा रही हैं।

राधे तू बड़ भागिनी
कोन तपस्या कीन्ह
तीन लोक तारन तरन
सो तेरे आधीन

एक सुन्दरी ने कहा—

राधा राधा कहेते
भव वाधा मिट जाय
कोट जन्म की आपदा
राधा नाम लिये सो जांय

राधे तुम क्यों इतनी दुःखी हो रही हो श्यामसुन्दर जल्दी ही आयेंगे वह आसपास में ही छिप रहे हैं। सभी सखियां राधाजी की सेवा में लग गईं। तथा उनको साथ में लेकर श्यामसुन्दर को देखने लगीं।

दृष्टः क्वापि समाधवो प्रिय सखीमादाय कांचिद् गतः ।
सर्वा एवहि वंचिता सखि वयं सोन्वेषणीयो यदि ॥६१॥
द्वे द्वे गच्छत इत्युदीर्य सहसा राधां गृहीत्वा करे ।
गोपी वेश धरो निकुंज कुहरं प्राप्तो हरिः पातु नः ॥६२॥

कैसी सुन्दर भक्तों की बाणी है। भगवान श्यामसुन्दर कहाँ हैं गोपियाँ कह रही हैं हमको प्रभु ने ठग लिया है। हम उनको ढूढ़े बिना न रहेंगी। दो-दो गोपियां उनको देख रही हैं कुछ राधाजी के साथ उनको देख रही हैं। भगवान कहाँ जायेंगे यहीं-कहीं लीलाधर छिप कर गोपियों को देख रहे हैं। या गोपियों में ही गोपी रूप धारण करके घूम रहे हैं।

ततो विशन् वनं चन्द्र ज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ।
तमः प्रविष्टमालभ्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥६३॥

ब्रज देवियां श्री राधा के साथ वन-वन में ब्रजलताओं से पूछ रही हैं पर कोई उत्तर नहीं मिला। अन्त में कुछ दयालु सहृदय लताओं ने पूछा गोपियों तुम ऐसी रात्रि में कैसी मत-वाली सी भटक रही हो गोपियां बोली अरी, वन सम्पदाओं तुमने हमारे चोर को छुपा लिया है ब्रजलता—तुम्हारे चोर का क्या नाम है गोपियां—अरी उसका नाम और पहचान बताना बहुत कठिन है। क्योंकि चोर का नाम बताना तथा उसका परिचय देना अपने शिर पर विपत्ति लेना है। इससे चोर का नाम लेना ठीक नहीं। पर हम इतना कह सकती है कि वह तुमको भी तड़फाता है। समझ गई। बताओ कहीं देखा हो तो। वनलता एकदम चौंक उठी और बोली बहिन क्या उस धूर्त की बात कर रही हो गोपियो—उस शठ की चर्चा मत

करो वह तो सबको इसी प्रकार सताता है। गोपियां बोली—बहिन, हम इसीलिए तो पूछ रही हैं कि कहीं मिल जाय तो उसे पकड़ कर अच्छी शिक्षा देंगी। देखो, राधाजी की कैसी दशा हो रही है।

वनलता बोली—बहिन, वह कहीं गह्वर कुंज में किसी के साथ छिप रहा है। उसका तो विलास मय जीवन है। उसका पीछा करोगी तो तुम भी अपनी मान मर्यादा खो बैठोगी।

गोपियां झुंझला कर बोलीं कि वह मान मर्यादा भाड़ में जाय हमें तो अपने चोर को ढूढ़ना है। तुमने अभी कहा वह किसी गह्वर कुंज में किसी के साथ छिप रहा है। वह किसी के साथ नहीं छिप सकता। उस पर तो एक मात्र राधा का ही प्रभाव पड़ सकता है। और राधा तो हमारे साथ है। वनलता—तदि ऐसा है फिर राधा को छोड़ कर क्यों छिप गया। गोपियाँ बहिन यह तो चोर की आदत होती है। चोरी करके छिप जाना और चोरी की वस्तु का छिप कर ही स्वाद लेता है।

वनलता बोली—बहिन, वह ऐसी कौन सी वस्तु चुरा कर ले गया जिसके लिए तुम इतनी व्याकुल हो रही हो।

गोपियां—अरी वनलताओ, उसने तो हमारा सब कुछ हरण कर लिया है। वह हमारा मनियां चुरा कर ले गया है। उसके बिना हमको एक क्षण के लिए भी चैन नहीं है। बहिन, जब तक हम अपना महारत्न न ले लेंगी। तब तक हम उसका पीछा नहीं छोड़ेंगी। और यह बात वह जानता है इसी से छुप रहा है उसकी मुँह दिखाने की शक्ति नहीं है।

वनलता बोली—मैं समझ गई तुम वृथा ही किसी को चोरी का कलंक लगा रही हो।

वास्तव में तुमने अपना मनिया उस पर स्वयं न्योछावर कर दिया है।

गोपियां—अरी लताओ, तुम तो वास्तव में जड़ हो जो जड़ की सी बातें कर रही हो। तुम यह नहीं जानती कि मन को खींचा जाता है। हृदय के अन्धकार से भी चुराया जाता है। देखो तुम भी तो उसे धूर्त और शठ बता रही। तुम्हें भी तो वह धोखा दे गया है।

तरुलता अच्छा, गोपियो एक बात बताओ उसने और भी कहीं चोरी की है या तुम्हारे ही घर चोरी की है।

गोपियां—बहिन, वह तो स्वभाव का ही चोर है। उसने न जाने कितनों का माल मारा है। वह तो चोरों का राजा है। उसने तो न जाने कितने सामर्थ्यशालियों के तत्वांश चुराये हैं। हमारी जैसी अवलाओं को हृदय धन चुराना उसके लिए कौनसी बड़ी बात है।

वनलता बोली—बहिन तब तो ऐसे बड़े शक्तिशाली का पता लगाना कठिन है।

गोपियां—अरी बावरी, वह हमसे बच कर कहाँ जायगा। हम उसका अवश्य पता लगायेंगी। वह अब जायेगा कहाँ। रस्ता का थका कहीं न कहीं सो रहा होगा।

वनलता—यदि वह किसी गिरि कन्दरा में होगा तो, तुम्हें उसका ढूँढ़ना कठिन हो जायगा।

गोपियाँ—अरी उसका अंग ही ऐसा प्रकाशमान है कि वह छिप ही नहीं सकता।

वनलता कह रही है देवियो ! तुम हमारी बात मानो इस समय यहाँ से लौट जाओ, रात हो गई है। बलवान जन्तुओं के आने का समय हो आया है। यहाँ से चली जाओ। तुम अबला हो अभी तो तुमने अपना मन खोया है। अब रात में तुम्हारा तन भी लुट जायेगा।

गोपियाँ -हँस कर बोलीं—वनलता वास्तव में तू जड़ लता ही रही हम समझती हैं कि तेरा उस नटखट के साथ अधिक सम्पर्क रहा है। इससे तेरी जड़ता बढ़ गई है। देख हमारे साथ में राधा है इसके तो कटाक्ष मात्र से ही वह स्वयं जड़ हो जाता है। राधा के तो दर्शन मात्र से ही वह मूर्च्छित हो जाता है। वह या उसके साथी वनचर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। हम तो उसे ढूँढ़ कर ही विश्राम लेगी। तू उसका पता बता या मत बता। जब तक वह हमारा चुराया धन हमको वापस न कर देगा। हम उसका पीछा नहीं छोड़ेंगी। हमारी यह साधना कम नहीं हो सकती। सखियां वनलताओं से बातचीत कर रही है पर श्री राधाजी की हृदय वेदना बढ़ती ही जा रही है। तब उस समय ललिताजी ने कहा राधे तुम इतनी अधीर क्यों हो रही है। देखो, जिनके साथ रहने से तुमको बुराई मिलती है।

तथापि तरलाशये न वितरतासि को दुग्रहः

फिर भी तू अपने हठ से टलती नहीं यह कौन सा दुराग्रह है। राधाजी ने कहा—

करोमि सखि किं श्रुते ।
दनुज बैरि वंशी रवे ॥
मनागपि मनो न मे ।
सुमुखि धैर्यं मालम्बते ॥६४॥

हे सुमखि सखि मैं क्या करूँ दनुजदमन श्री कृष्ण की थोड़ी सी वंशी ध्वनि को सुनते ही मेरा मन किंचिन्मात्र भी धैर्य धारण नहीं करता। और यदि श्री कृष्ण से प्रीति करने से मेरी अकीर्ति होती है तो होने दो इसकी मुझे चिन्ता नहीं पर सखि तू सत्य सत्य कहना कि उस वंशी ध्वनि को सुनकर तेरी क्या दशा होती है फिर मेरे चित्त के दोष गुण बताना ललिता जी बोलीं—

सत्यं जल्पसि दुःसहा खल गिरः ।
सत्यं कुलं निर्मलं ॥
सत्यं निष्करुणोऽप्ययं सहचर ।
सत्यं सुदूरे सरित् ॥९५॥
तत्सर्वं सखि विस्मरामि झटति ।
श्रोत्रातिथिर्जायते ॥
चेदुन्माद मुकुन्द मंजु मुरली ।
निस्वान रागोद् गतिः ॥९६॥

राधे तू कहती तो सत्य है और मैं भी जानती हूँ कि दुष्टों की वाणी असह्य है और हमारा कुल अति निर्मल है यह भी सत्य है और बहिन प्रेमास्पद श्री कृष्ण भी दयाहीन हैं तथापि उसकी मधुर मुरली की ध्वनि सुनकर मैं सब भूल जाती हूँ।

यहां देवी चन्द्रानना इनकी बात सुन रही है। वह सभी सखियों को सावधान करके कहने लगी—बहनो एक उपाय मुझे श्री कृष्णजी के मिलने का मिल रहा है। सभी सखियां सावधान होकर सुनने लगी। देखो एक समय नारद जी ने नारायण से पूछा था। प्रभो! आपका रहने का स्थान कौन सा है। तब प्रभु ने नारद को बताया —

नाहं वसामि बैकुन्ठे ।
योगिनां हृदये तथा ॥
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति ।
तत्र तिष्ठामि नारदः ॥९७॥

भगवान ने कहा—देवर्षे, न तो मैं बैकुण्ठ में रहता हूँ और न मैं योगियों के हृदय में रहता हूँ। मैं तो जहाँ मेरे भक्त मेरा गुणानुवाद गान करते हैं। वहाँ रहता हूँ। इसीलिए तो कथा सत्संग का इतना बड़ा माहात्म्य है। ऐसे प्रसंगों में महाप्रभु स्वयं आकर सहयोग देते हैं। न जाने किस रूप में प्रभु आ जाते हैं। इसीलिए सच्चा साथी सच्चा भाई सच्चा सहोदर एक सत्संगी भाई ही कहलाता है। जिसके साथ बैठ कर हम सदा कथा सुनते हैं सद्वार्ता करते हैं—

सत्कथा ही भगवान को प्यारी लगती है। आओ अब हम मिल कर भगवान के गुण कीर्तन करे :—

राम राम कहते रहो,
जब लग घट में प्रान ।
कबहु तो दीन दयाल की,
भनक परेगी कान ।

इससे प्रभु अवश्य कृपा करेंगे।

॥ इति रास क्रीणा वर्णन नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः

जयतितेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्रहि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका
स्त्वयि धृता सवस्त्वां विचिन्वते ॥६८॥

हे श्यामसुन्दर जब से आपने व्रज में जन्म धारण किया है तब से लक्ष्मी इस गांव में निवास करती है।

हे प्यारे हम सब आपकी दासी हैं हमारे तो जीवन धन आप ही हो। हम आपके दर्शनों के लिए भटक रही हैं। अब आप हमको अधिक मत सताओ। सदा आपने हमारी रक्षा की है। आज इतने कठोर क्यों बन गये हैं।

हे दयित, तुम्हारी गोपियां जिन्होंने तुम्हारे चरणों में ही अपने प्राण समर्पित कर रक्खे हैं। वे वन-वन में भटक कर आपको ढूँढ़ रही हैं। गोपियों ने श्यामसुन्दर को दयित सम्बोधन करके अपनी दीनता दिखाई है। हमारे इस वचन को सुनकर भगवान के हृदय में दया पैदा हो जायगी।

हे हृदय सर्वस्व हम तो आपकी बिना मोल की दासी हैं। हमको आप क्यों मार रहे हो। हे श्यामसुन्दर किसी का शस्त्र से वध करना हो वध नहीं होता, आप तो कमल कर्णिका के सौन्दर्य को चुराने वाले नेत्रों से मार रहे हैं। जो रक्षक है, वही भक्षक बन जाय फिर किस की शरण में जाय। आप

इतने कठोर क्यों बन गये हो। ऐसा हमसे कौन सा अपराध बन गया है।

हे दयालु हृदय प्राणियों के दुःख दूर करने को ही आपका अवतार हुआ है। आपका ही यह वचन है। परित्राणाय साधनां विनाशय चदुस्कृताम्।

फिर आप अपने वचन से क्यों गिर रहे हो। आप अपने नाम को क्यों बिगाड़ रहे हैं। आपको सब कहते हैं कि श्री कृष्ण सत्य प्रतिज्ञ है। अपनी प्रतिज्ञा को कभी नहीं छोड़ते।

प्रतिज्ञा नियमौ यस्य।
सुदृढौ स दृढव्रतः ॥९९॥

जिसकी प्रतिज्ञा एवं नियम दृढ़ हो, वह दृढ़व्रत कहलाता है।

पाण्डव पत्नी द्रौपदी महारानी सदा आपके वचनों पर ही जीवित रही थी।

प्रतिज्ञातव गोविन्द,
न मे भक्तः प्रणश्यति।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य,
प्राणान्संधारयाम्यहम् ॥१००॥

हे गोविन्द, आप सदा कहते हो कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। इसी वचन को ध्यान में रख कर, मैं प्राण धारण कर रही हूँ। दुःखों का कोई पार नहीं है। केवल आपके वचनों के सहारे ही भक्त जीवित है।

श्यामसुन्दर जिस समय इन्द्र का कोप व्रज पर हुआ था।

स्थूणा स्थूला वर्ष धारा।
मुंचत्स्वभेष्व भीक्ष्णशः ॥

जलौघैः प्लाव्यमानाभू ।
र्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥१०१॥

हाथी की सूंड जैसी मोटी वर्षा की धारा से सब ब्रज को डुबा दिया था। इस भूमि का रूप ही बिगाड़ दिया था। उस समय आप अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके शीघ्र रक्षक बन गये थे।

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं,
मन्नाथंमत्परिग्रहम् ।
गोपायेत्स्वात्म योगेन,
सोऽयं मे व्रत आहितः ॥१०२॥

यह व्रज मेरी शरण है। मैं ही इसका नाथ हूँ। यह मेरा परिवार है। मैंने इसकी रक्षा के लिए प्रतिज्ञा की है। मैं आत्मयोग से इसकी रक्षा करूँगा। उस समय आपने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया था। श्री गिरिराज को धारण करके व्रज की रक्षा की थी। अब आप अपनी प्रतिज्ञा क्यों भूल गये।

रामावतार में जब आप सीता के साथ वन को चले थे। उस समय आपसे सीताजी ने कहा था। हे राम भद्र! हम चौदह वर्ष की यात्रा पर निकसे हैं यहाँ आप हिंसा मत करना। यहाँ तो अहिंसा व्रत का ही पालन करना है। उस समय आपने जानकी जी से क्या कहा था आपको ध्यान है।

अप्यहं जीवितं जह्यात्
त्वां वा सीते स लक्षणं
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य

ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः
तदवश्यं मया कार्यं
ऋषीणां परि पालनम् ॥१०३॥

सीते तुम जो कहती हो वह ठीक है पर मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकता। हे जनक राजदुलारी, मैं अपने जीवन का त्याग कर सकता हूँ। सीता मैं तुमको भी छोड़ सकता हूँ और इस प्यारे अनुज लक्ष्मण का भी त्याग कर सकता हूँ। किन्तु जो मैंने ब्राह्मणों के सामने प्रतिज्ञा की है कि इस जंगल के दुष्ट असुरो का मैं नाश करूँगा। इस प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ सकता। उस समय आपने अपने वचन के अनुसार ऋषि मुनि साधु महात्माओं की उस समय उन असुरों को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। श्यामसुन्दर यह भी आपका ही वचन है :—

पतेद्यौ हिमवान् शीर्येत् ।
पृथ्वी च शकली भवेत् ॥
शुष्तेत्तोयनिधिः कृष्णे ।
नमेमोघं वचो भवेत् ॥१०४॥

कृष्णा द्रोपदी की विपत् देख कर आपने कहा था। हे कृष्णे तू इतनी व्याकुल क्यों हो रही है। देख चाहे यह आकाश पृथ्वी में गिर जाय। चाहे हिमाचल पर्वत बिखर जाय। चाहे इस पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। यह समुद्र सूख जाय, पर मेरा वचन कभी नहीं गिर सकता। मेरा वचन अमोघ है। क्या आप इन सब अपने प्रतिज्ञा वचनों को भूल गये। सुखिया अपनी सब बातें भूल जाता है। पर दुखिया को सब बातें याद आती है। व्रज के राजा आज इतनी कृपणता क्यों दिखा

रहे हो। देखो, यह पूरी रात आपको ढूढ़ते-ढूँढ़ते बीत चली है।

विष जलाप्ययात् व्यालराक्षसात् ।
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।।
वृष मयात्मजाद्विश्वतो भयात् ।
ऋषभतेवयं रक्षिता मुहुः ।।१०५

हे पुरुषोत्तम, आपने कालीदह के विषैले जल से रक्षा की, अघासुर अजगर से रक्षा की इन्द्र की वर्षा आँधी बिजली से रक्षा की, अरिष्टासुर दैत्य से रक्षा की, व्योमासुर से रक्षा की विश्व के अनेक भयों से रक्षा की है, किन्तु आज हमको क्यों भूल गये।

हे यादवेन्द्र, आप केवल गोपिका नन्दन ही नहीं हो। आप तो ब्रह्मा की प्रार्थना सुन कर विश्व रक्षा को प्रगट हुए हो। अब आप क्यों देर कर रहे हो। अपने कर कमल जो कि विश्व रक्षक हैं, उन्हें हमारे शिर पर रख कर हमको अभय दान करो। हे सखे! आप अपने इन सुकोमल चरणों से वछड़ों के पीछे-पीछे चलते हैं। हमारी रक्षा के हेतु सांप के फड़ पर भी चरण रखने में सँकोच नहीं करते फिर हमारे हृदय में उन चरणों के रखने में क्यों देरी कर रहे हो।

स्वामी आप गौचारण को जाते हो। उस समय आपके श्री चरणों में कंकड़-कांटे छिद जाते हैं। उस समय हमारा मन वेचैन हो जाता है। हम इन चरणों की यह वेदना को भी नहीं सह सकतीं। आज वह चरण हमसे कितनी दूर है। इस वन में और इस रात्रि में कहाँ छिप रहे हैं। हमारे मन में उनके दर्शनों की आकांक्षा बढ़ रही है।

प्रणत कामदं पद्मजार्चितं
धरणि मण्डलं ध्येयमापदि
चरण पंकर्ज शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेस्वर्पयाधिहन् ॥१०६॥

प्रियतम, आपके चरण कमल शरणागत की रक्षा करने वाले हैं, स्वयं लक्ष्मी जी भी उनकी सेवा करती हैं। पृथ्वी में तो यह भूषण रूप है। आपत्ति के समय तो स्मरण मात्र से ही सहायक बन जाते हैं। बिहारी जी अब हमको अधिक मत सताओ अपने श्री चरणों को हमारे वक्षस्थल पर रख कर हृदय की व्यथा को शीघ्र दूर करिये।

हे वीर क्या वह अधरामृत हमको नहीं मिलेगा। जिसका पान यह वेणु सदा करती है। वीर आप उदार बन कर सभी को अधरामृत का पान कराइये। हमारी दशा पर कुछ तो ध्यान दीजिये। अति दीन होकर गोपियां प्रार्थना कर रही हैं पर उनकी पुकार कौन सुनता है। अन्त में गोपियों को आवेश आ गया और बोली :—

पति सुतान्वयाभ्रातृबान्धवा
नति विलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः
गति विदस्तवोद्गीत मोहिताः
कितवयोषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१०७॥

हे कितब ठगिया हमको ऐसा पता नहीं था कि आप इतने कठोर हो। हम अपने पति पुत्र भाई बन्धु सबको छोड़कर आई हैं और तुम ऐसी रात्रि में सबको छोड़कर चले गये। हम अब तुम्हारी इस चाल को समझ गई। आप इसी प्रकार अपने गान से मोहित करके सबको धोखा देते हो।

श्यामसुन्दर हम व्यर्थ में तड़फ रही हैं कि तुम्हारे चरण कांटों से छिद रहे होंगे। हम इन चरणों को कितना सुकोमल समझ रही थी जो अपने स्तनों पर भी बड़ी सावधानी से रखती कि कहीं आपके चरणों को चोट न लग जाय। हमको तो उन चरणों पर अब भी दया आ रही है। चाहे आपका कैसा भी कठोर व्यवहार है ऐसा कहती-कहती वह देवियां अचेत हो गईं। सावधान होने पर पुकारने लगीं।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
हा नाथ नारायण वासुदेव

श्री कृष्ण प्राणनाथ श्यामसुन्दर हमारा जीवन तुम्हारे लिये है। हम सब तुम्हारे लिए जी रही हैं हमको आशा है कि आप हमको अवश्य मिलेंगे। प्रभु यदि आपको हमसे मिलने की इच्छा नहीं है तो अब हम आपको नहीं बुलायेगी। पर आप अपने नंगे चरणों से जंगल में न भटकें। आपको बहुत परिश्रम हो रहा है। हम आपको इतना कष्ट देना नहीं चाहती। इससे आगे अब गोपियों की कुछ कहने की शक्ति नहीं रही।

अब तो व्रजदेवियां सब कुछ त्याग कर सर्वेश्वर भगवान की कथा गुणगान को ही सर्वश्रेष्ठ मान कर उनके कथामृत की ही महिमा वर्णन करने का निश्चय कर लिया।

अतोनृलोके ननु नास्ति किंचित्
चित्तस्यशोधाय कलौ पवित्रम्
अधोघ विध्वंसकरं तथैव
कथा समानं भुविनास्ति चान्यत् ॥१०८॥

मनुष्य लोक में चित्त की शुद्धि के लिए कथा से बढ़कर

और कोई पवित्र साधन नहीं है। इससे बड़ा कोई रस नहीं है। यह रस भूमि में ही मिलता है। स्वर्ग में सत्यलोक में तथा कैलाश एवं वैकुन्ठ में नहीं मिलता। इसलिये बड़-भागियो कथा के बिना अपने समय को व्यर्थ में मत गमाओ।

स्वर्गे सत्ये च कैलासे बैकुन्ठे नास्ययं रसः। अतः पिवन्तु सद्भाग्यामामानुचतु कहिंचित्।

तव कथामृतं तप्त जीवनं
कविभिरीडितं कल्मषायहम्
श्रवण मंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदाजनाः ॥१०९॥

आपका कथा रूपी अमृत सांसारिक तापों से सन्तप्त मनुष्यों को जीवन देने वाला है। विद्वान् कवि कहते हैं। यह पापों का नाश करने वाला है और दानी भी संसार में वह कहलाता है जो सबको कथामृत सुनाता है। स्वर्ग का अमृत तो केवल जीवन ही दे सकता है। फिर भी वह मादक है और यह कथामृत तो स्वर्ग के अमृत से भी श्रेष्ठ है। कारक कामेच्छा तथा कामेच्छा जनित कर्म एवं समस्त पापों का नाश करने वाला है यह गुण स्वर्ग के अमृत में नहीं है। नाथ इसमें तो और भी विशेष गुण है कि श्रवण मंगलम् सुनने मात्र से ही मंगल करता है कितना सुखद सरल सरस साधन है। इसके निरन्तर सुनने से चोर चोरी करना छोड़ देता है हिंसक हिंसा करना छोड़ देता है। कामी की तो काम वासना को काट कर दूर कर देता है। क्रोधी को एकदम शान्त बना देता है और मूर्ख को विद्वान बना देता है।

एक भयानक चोर तो कथा में इतना सुनकर व्याकुल

होगया कि यशोदा का नीलमणि अमूल्य रत्नों के आभरण पहन कर अकेला ही गोचारण को जाता है। वह चोर व्यास जी से बोला--गुरुदेव ! यह यशोदा का नीलमणि कहाँ मिलेगा। व्यासजी ने कहा भाई, वह वृन्दावन में यमुना तट पर एक कदम्ब के नीचे गाय चराता है। चोर के हृदय में उन गहनों के लेने की कैसी लगन—जिससे वह यशोदा के नीलमणि के पास पहुंच गया (विश्वास से ही सफलता मिलती है) और श्री कृष्ण जी के दर्शन करके भाव में विभोर हो गया। उस दिन से चोरी करना छोड़ दिया।

एक बधिक जिसकी जीविका ही वध करने की थी। पर वह कथा सुनता था राजा भोज के मारने को उसी की नियुक्ति हुई थी। पर उस वधिक के हृदय में दया उत्पन्न हुई उसने भोज का वध नहीं किया। कामान्ध विल्व मंगल ने अपनी आंख भी नष्ट कर दी जिससे अब काम प्रवेश ही नहीं कर सकता।

संसार में कहते हैं क्रोध बड़ा प्रबल है किन्तु उसके मारने का सहज उपाय है शान्ति।

त्रिविध नरक स्पदं

द्वारं नाशनमात्मनः

कामः क्रोधस्तवालोभ,

स्तस्मादेत्तत्रयं त्यजेत् ॥११०॥

काम, क्रोध, लोभ यह तीनों नरक के मार्ग हैं। इनमें भी प्रवल क्रोध है एक क्रोध के जीतने से सब वश में हो जाते है।

क्रोधमूलोमनस्तापः क्रोधः संसार वन्धनः ।
धर्मक्षय करः क्रोधस्तस्मात् क्रोधं परित्यजेत् ॥१११॥

क्रोध ही मन के सन्तापों का मूल कारण है क्रोध ही संसार का बन्धन है धर्म के नाश करने वाला एक क्रोध ही है इसलिये क्रोध का ही त्याग करना सब पर विजय पाना है। श्री राम के वनवास के समय जब लक्ष्मण जी का क्रोध बढ़ा था। उस समय रामजी ने अपने अनुज लक्ष्मण से कहा था :—

क्रोध एव महान् शत्रुः
स्तृष्णा वैतरणी नदी
सन्तोषं नन्दन, वनं
शान्ति रे वहि कामधुक् ॥११२॥

मेरे प्यारे लक्ष्मण यह क्रोध सबसे बड़ा शत्रु है और तृष्णा वैतरणी नदी है। और भाई यह सन्तोष नन्दन वन है पर शान्ति तो सबसे श्रेष्ठ कामधेनु है।

दो व्यक्ति परस्पर लड़ रहे हैं यदि उनमें एक शान्त हो जायगा तो क्रोध अपने आप मर जायगा। क्रोध के मारने का उपाय शान्ति है।

तस्मात् शान्ति भजस्वाद्य शत्रु रेव भवेन्न हि।

गोपियाँ कह रही हैं तब कथामृर्त तप्त जीवनम्। आपका कथामृत ही तापत्रय विनाश करने वाला है। सत्संग कथा गंगा में स्नान करने से शरीर के सभी दोष शान्त हो जाते हैं। यह सब कथा से ही ज्ञान मिलता है। कथा सुनने वाले भक्त आपको ऐसे मिलेंगे जिनके सत्संग से यह मालूम होगा। यह कैसा बड़ा विद्वान है। वह कथा पीयूष हाथियों के जैसे मद का भी नाश कर देता है और वह हाथी हरि भक्त बन जाता है।

॥ इति रासक्रीड़ा वर्णन नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

श्री शुक उवाच :

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः
प्रलपन्त्यश्च चित्रधा
रुरुदुः सुस्वरं राजन्
कृष्ण दर्शन लालसा ॥११३॥

श्री शुकदेवजी कहते हैं। हे परीक्षित भगवान् की प्यारी गोपियाँ विरह के आवेश में प्रलाप करने लगी :—

आलापश्च विलापश्च
संलापश्च प्रलापकः
अनुलापापलापौ च
सन्देशश्चाति देशकः ॥११४॥

इनके बारह भेद हैं। आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, व्यपदेश यहाँ प्रलाप है। अर्थालाभः प्रलापः मनोरथ सफल न होने को प्रलाप कहते हैं। श्री कृष्ण दर्शन की लालसा से अपने को वह रोक न सकी। करुणाजनक सुमधुर स्वर से फूट-फूट कर रोने लगीं।

एहि मुरारे कुंज विहारे
एहि प्रणत जन वन्धो
हे माधव मधु मथन वरेण्य
केशव करुणा सिन्धो

रास निकुंजे गुंजति नियतं
भ्रमर शतं किल शान्त
एहि निभृत पथ पान्थ
त्वामिह याचे दर्शन दानं
हे मधुसूदन शान्त
शून्यं कुसुमासनमिह कुंजे
शून्यः केलि कदम्बः
मृदु कल नादं किल स विशादं
रोदित यमुना स्वन्भः
नवनीरजधर श्यामल सुन्दर
चन्द्र कुसुम शुचिवेश
गोपीगण हृदयेश
गोवरधन धर वृन्दावन चर
वंशीधर परमेश
राधा रंजन कंस निसूदन
प्रणति स्ताविक चरणे
निखिल निराश्रय शरणे
एहि जनार्दन पीताम्वर धर
कुंजे मन्थर पवने
एहि मुरारे नन्द दुलारे
एहि प्रणत जन वन्धो
हे माधव मधु मथन वरेण्य
केशव करुणा सिन्धो

श्यामसुन्दर गोपियों की सभी लीला छिपकर देख रहे हैं। पर गोपियों का रुदन सहन न कर सके।

तासामाविरमूच्छौरिः, स्मयमानमुखाबुजः
पीताम्बरधरः स्रग्वी, साक्षान्मन्मथ मन्मथः ॥११५॥

भगवान गोपियों में प्रगट हो गये उस समय की शोभा, वह शौरि श्री कृष्ण पीताम्बर धारण कर रहे थे पुष्पों का हार उनके वक्षस्थल पर शोभित था, मुख पर जगत को मोहित करने वाली मन्द हंसी थी साक्षात् कामदेव के मन को भी मथन करने वाला उनका स्वरूप था। एक-दो कामदेव नहीं अपितु कोटि-कोटि कामों में भी सुन्दर अपने प्राणवल्लभ को देख कर गोपियां खड़ी हो गई मानो उनके प्राण लौट आये। अब तो प्रभु के सन्मान में लग गईं। कोई उनको आसन लगा रही है तो कोई उनका पटका सम्भार रही है तो कोई उनके शृङ्गार मुकुट कुण्डलों को सम्भारने लगी। एक गोपी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कोई उनकी भुजाओं को सहराने लगी। किसी ने उनका चन्दन चर्चित भुजदण्ड अपने कन्धे पर रख लिया। किसी ने भगवान का चबाया हुआ पान अपने हाथों में ले लिया।

एकाभ्रुकुटिमावध्य
प्रेम संरम्भ विह्वला
घ्नती वैच्छत् कटाक्षेपैः
सन्दष्ट दशनच्छदाः ॥११६॥

एक गोपी तो प्रणय कोप में विह्वल होकर भौंहे चढ़ा कर दांतों से होठों को दबा कर अपने कटाक्ष बाणों से वीधती हुई

रसराज श्री राधामाधव

उनकी ओर देखने लगी। कितना भी उसको कोप है पर दर्शन से तृप्त नहीं हो रही सभी देवियां अपने नेत्रों से प्रभु को हृदय में ले गई तथा अपनी आँखें बन्द कर ली। कारण अब श्री कृष्ण कहीं चले न जाय मोक्ष की कामना वाला परम ज्ञानी सन्त को प्राप्त करके संसार की पीड़ा से मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार गोपियां भगवान के दर्शन पाकर विरह सागर से मुक्त होकर आनन्द सागर मैं डुबकी लगाने लगी। जहाँ वृन्दावन बिहारी खोये थे वहीं वंशीवट पर आज मिल गये।

आज एक विशाल सभा मण्डप में श्यामसुन्दर विराजमान हैं। जिनको बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय आसन पर जिनको विराजमान करने की साधना करते हैं। आज वह योगेश्वर गोपियों की चादर के आसन पर बैठे हुए हैं। गोपियां भी गोपिका गीत में जैसी आश लगा रही थी। वह चरण कमल आज उनको मिल गये। एक गोपी ने कहा—बहिन, श्री कृष्ण के वियोग में जो हमारी दशा हुई थी उनका इनको कुछ ज्ञान है या नहीं इसकी तो कुछ जानकारी करो उस समय गोपियों ने श्यामसुन्दर से कुछ प्रश्न कर दिये।

भजतोऽनुभजन्त्येक
एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजत्येक
एतन्नोब्रूहि साधुभोः ॥११७॥

बिहारी जी एक बात तो बताइये देखिये, एक पुरुष तो वह होते हैं। जो कि प्रेम करने वाले से ही प्रेम करते हैं। और कुछ लोग ऐसे हैं कि प्रेम न करने वाले से भी प्रेम करते हैं। और कोई-कोई ऐसे होते हैं जो प्रेम करने बाले तथा प्रेम न करने बाले किसी से प्रेम नहीं करते।

प्रभु आप इस प्रश्न का उत्तर समझाइयेगा।

श्री भगवानुवाच—

श्री भगवान ने कहा—मेरी प्रिय सखियो! जो प्रेम करने वाले से प्रेम करता है। वह स्वार्थ भरा हुआ है। तू मुझे करता है तो मैं तुझे करता हूँ। इसमें न तो सौहार्द है और न धर्म है। ऐसे लोगों का प्रेम तो केवल स्वार्थ से भरा हुआ है और जो प्रेम न करने वाले से भी प्रेम करते हैं, वहाँ करुणा है। जैसे माता-पिता, पुत्र कैसा भी है पर करुणा के सागर माता-पिता सदा उसकी भलाई ही चाहते हैं। इसमें सत्य और धर्म है। सखियो! जो लोग प्रेम करने वाले से भी प्रेम नहीं करते उनका प्रेम न करने वालों से तो क्या सम्बन्ध है। ऐसे पुरुष चार प्रकार के होते हैं।

आत्मारामा ह्याप्त कामा,
अकृतज्ञा गुरु द्रुहः ॥११८॥

एक तो वह जो अपने स्वरूप में ही आनन्द लेते हैं। जिनकी दृष्टि में कभी द्वैत नहीं रहता। दूसरे वह जो कृत कृत्य हो गये हैं उनका किसी से कुछ प्रयोजन ही नहीं। तीसरे वह जो जानते ही नहीं कि हमसे कोई प्रेम करता है और चौथे जो जानबूझ कर अपना हित करने वाले परोपकारी गुरु तुल्य लोगों से भी द्रोह करते हैं। उस समय एक गोपी ने कहा—प्रभु, तब आपको किस श्रेणी में रक्खा जाय। भगवान ने कहा—गोपियो, मैं किसी में नहीं हूँ। मैं इन चारों से बाहर हूँ। एक गोपी बोली—फिर तो आप महानिठुर हैं।

श्री कृष्ण चन्द्र ने कहा—सखियो, मैं तो दयालु तथा उदार हृदय हूँ। गोपी—श्यामसुन्दर हमको आपने रात भर रुलाया। क्या यह आपकी दयालुता है।

श्री कृष्ण—तो आप मेरे जैसे निठुर से प्रेम क्यों करती हो जब मैं दोषी हूँ, तब तो आप मुझे भूल जाओ।

गोपी—श्याम, यह प्रेम भूलने भी तो नहीं देता। हम क्या करें।

श्री कृष्ण—अच्छा तो यह बताओ मैंने जो तुमको रात भर रुलाया है इससे तुम्हारा प्रेम घट तो नहीं गया। गोपी—श्यामसुन्दर, घटने की क्या बात है यह तो उत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है। श्री कृष्ण—देवियो, जब तुम्हारी सम्पत्ति बढ़ी है तब तो आनन्द भी बढ़ा है। बताओ, यह तुम्हारी हानि है या लाभ। गोपी ने कहा—जी, लाभ ही हुआ है। श्रीकृष्ण—जब मैंने तुम्हारी प्रेम सम्पत्ति को बढ़ाया है फिर आप मुझे दोषी क्यों बता रही हो।

देखो, न तो मैं कृतघ्नी हूँ और न मैं गुरुद्रोही ही हूँ। मैं तो तुम्हारा परम स्नेही सुहृद हूँ। मैंने तो तुम्हारी प्रीति की कचाई को पका कर उसे मधुर एक रस बना दिया है।

एक गोपी ने कहा—श्यामसुन्दर, हमारी प्रीति में क्या कचाई थी। हम तो सब मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न कर आपकी शरण में आई हैं। हमारे इस प्रेम में आपने कौनसी कचाई देखी। जिसके लिये हमको इतना ताप सहना पड़ा।

भगवान हंसकर बोलें—देखो, ब्रज देवियो आम की कचाई पकाई को आम नहीं पहचान सकता। उसे तो माली ही पहचान सकता है। जिसने उसे लगाया है सींचा है।

जैसे-जैसे फल बढ़ता है वैसे ही माली की आशा बढ़ती है समय आने पर उसको उस फल का स्वाद मिलने लगा

जब तक फल कच्चा रहता है उसे पकाने की चेष्टा करता है।

इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारी हृदय वगिया में प्रीति का बीज बोया था। उसे गली-गली में जाकर सींचा था। जब तक वह परिपक्व न हो जाय तब तक कैसे उसमें हाथ लगाता।

इसमें चाहे आप सब मुझे क्रूर कहो चाहे कठोर कहो। गोपियाँ चुप हो गई और कहने लगी—बहिन यह श्री कृष्ण तो शिक्षा गुरु है। भगवान ने कहा—गोपियो, मुझमें दोष मत लगाओ। मैं जो कुछ करता हूँ इसलिए करता हूँ कि लोगों की चित्त की वृत्ति अधिक से अधिक मुझमें लगती रहे देवियो! इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगों ने मेरे लिए सब कुछ त्याग दिया है। लोक मर्यादा वेद मार्ग तथा अपने सगे सम्बन्धी तुम्हारी मनोवृत्ति केवल मुझमें ही लगी रही। इस लिए परोक्ष रूप में प्रेम करता छिप गया था। तुम मेरे प्रेम में दोष मत लगाओ, तुम मेरी प्यारी हो और मैं तुम्हारा प्यारा हूँ। मैं तुम्हारी सेवा त्याग का बदला कभी नहीं चुका सकता।

॥ इति रास क्रीड़ा वर्णन नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

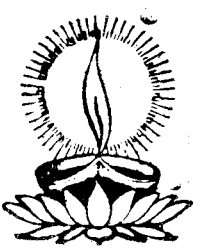

पंचमोऽध्यायः

श्री शुक उवाच :

इत्थं भगवतोगोप्यः
श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः
जहुर्विरहजं तापं
तदंगोपचिताशिषः ॥१९६॥

इस प्रकार ब्रज देवियां भगवान् के वचन सुन कर विरह जन्य ताप से मुक्त हो गई तथा परमात्मा श्री कृष्ण चन्द्र के अंग संग से सफल मनोरथ हो गई।

गोपियां बोलीं—महाराज, रात तो अब बहुत बीत गई है इसमें रास कैसे होगा। भगवान ने कहा—तुम चिन्ता मत करो। यह रात्रि छः मास के बराबर हो जायगी।

उसी समय रासविहारी ने वृन्दादेवी को बुलाया। वृन्दा जी आ गई, श्यामसुन्दर ने कहा—तुम जल्दी से रास मण्डल सजाओ।

वृन्दा जी ने यमुना तट वंशी वट पर एक दिव्य मैदान में रास मण्डल तैयार कर दिया तथा सभी आवश्यकीय सामिग्री एकत्रित कर दीं। जैसे शृङ्गार विहार विश्राम के लिए अनेक अद्भुत निकुंज बना दी। मानो यहाँ गोलोक की सम्पदा आ गई। उस समय राज राजेश्वर ने भी गोपियों को एक चित्त करने को वंशी बजाई। उस मुरली का कैसा प्रभाव।

बाँसुरी बजाय आज रंग सों मुरारी ।
शिव समाधि भूल गये मुनिजन की तारी ।
वेद भनत ब्रह्मा भूले भूले ब्रह्मचारी ।
सुनत ही आनन्द भयौ लगी है करारी ।
रम्भा सब ताल चूकी भूल नृत्य कारी ।
यमुना जल उलट भयो सुधना सम्भारी ।
श्रीवृन्दावन वंशी वजी तीन लोक प्यारी ।
सुन्दरश्याम मोहिनी मूरत नटवर वपुधारी ।
सूरकिशोर मदनमोहन चरणन वलिहारी ।

* * *

रून्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं
कुर्वन्मुहुस्तुम्वरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दन मुखात्
विस्मापयन्वेधसम्
औत्सुक्या वलिभिर्वलिं चटुलयन्
भोगीन्द्र माघूर्णयन्
भिन्नन्नण्ड कटाह भित्ति मभितो
बभ्राम वंशीध्वनिः॥१२०॥

बंशी ध्वनि केवल वृन्दावन को ही झंकृत कर रही है। यह बात नहीं वह तो क्षन्तरिक्ष से भी ऊपर उठ चली। स्वर्गायक तुम्वरु भी विस्फारित नेत्रों से वृन्दावन की ओर देखने लगा सनक ससनन्दन प्रभृति की भी समाधि टूट गई वह विक्षिप्त चित्त होकर चारों ओर देखने लगे। दानवेन्द्र वलि भी आश्चर्य में पड़ गये। भोगीन्द्र अनन्त देव भी आज

घूर्णित होने लगे। समस्त ब्रह्माण्ड में रस सिन्धु उमड़ पड़ा। वंशी के मधुर रस ने ही रास मण्डल की सजावट कर दी है। रास नृत्य का परम सुन्दर मैदान बना दिया है।

तत्रारभगगोविन्दो
रास क्रीडामनुव्रतैः
स्त्री रत्नैरन्वितः प्रीतैः
रन्योन्यावद्ध बाहुभिः ॥१२१॥

रास यज्ञ प्रारम्भ हो गया एक दूसरे की भुजाओं में भुजा लिपट रही हैं। परात्पर भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने भी अनेक रूप धारण कर लिए हैं। दो-दो गोपी एक-एक कृष्ण। जिससे सभी गोपी श्री कृष्ण जी को अपने पास समझने लगीं। अन्यथा सभी गोपी श्री कृष्ण जी के पास कैसे रह सकती थी—

अंगनामङ्गनामन्तरे माधवो
माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना
इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः
संजगौ वेणूना देवकी नन्दनः ॥१२२॥

मध्य में श्री राधा कृष्ण और उनके चारों ओर श्री कृष्ण एवं गोपियों के अनन्त मण्डल थे। ब्रह्म वैवर्त महा पुराण के आधार पर तीन लाख अस्सी हजार तीन सौ साठ (३८०३६०) बताते हैं और गर्ग संहिता के आधार पर गोपियों के सौ यूथ १०० बताते हैं। गोपियों की संख्या करना कठिन है। व्रज चौरासी कोश से व्रजकिशोरी गण रासमण्डल में आई है जो भागवत रस या भक्ति रस की अधिकारिणी हैं तथा भगवत भक्त रसिक सन्त ही इस रस के अधिकारी हैं।

वृद्ध मीमांसक, कर्मवादियों से इस श्री कृष्ण भक्ति रस की सदा रक्षा करनी चाहिए।

जरन्मीमासकाद्रक्षः कृष्ण भक्ति रसः सदा।
सर्वथैव दुरुहोऽयमभक्तै र्भगवद्रसः।
तद पादाम्वुज-सर्वस्वैर्भक्तै रेवास्य रंस्यते।

भक्ति रसामृत सिन्धु तात्पर्य यह है भगवत रसिक ही इस रास रस के अधिकारी है वृन्दावन वंशीवट रास मण्डल की सजावट तो योग माया ने ही की है।

वनं वृन्दावनं नाम सर्व शृंगार दायकं।
सर्वत्र कांचनी भूमिः दिव्योद्यान समुद्भवे।।

गोविन्द लीलामृत में लिखा है। यहाँ के उद्यान में वृक्षों के तने स्वर्ण मणियों के तथा स्थूल शाखा इन्द्र नीलमणि की हैं उपशाखा स्फटिक मणि की है। पत्ते मरकत मणि के हैं। उन पर कोपलें पद्मराग मणि की हैं तथा पुष्प स्फटिक मणि के हैं तथा फल मुक्ता मणि के लगे हुए हैं।

अब आप वृन्दावन के वृक्षों के नाम सुनिये।

ताल, तमाल, रसाल, पियाल, पलास, अनन्नास, साल एवं अमलतास, देवदास, हर-पीपर पाकर, गूलर, बर, केशर, वट, हर और वैर, अंजीर, आम, बदाम, श्याम, अखरोट, नारंगी, नास्पति, नरियल, नीम, सिरस, पनज, महुआ, सेमर, सन्तरा, जामुन; सुगन्धरा, छुहारा, सीताफल, अमरूद, कदम्व, अनार, कनेर, कचनार, अशोक, जम्बीर, देवदार। यह प्राकृत कल्पवल्ली नहीं है। यह तो रास बिहारी के चिन्मय धाम के चिन्मय तत्व से गठित हैं और भी उद्यान के पुष्प वृक्षों की शोभा।

गुलाब, गुलावांस, गुलकेरा; गुल सव्वो, गुडहर, गुल-

दाऊदी, गेंदा, मोगरा, मोतिया, मोरश्री, मालती, मरुआ, मदनवान, कदम्ब, कोअल, केतकी, कनेर, कमोदनी, कमल, कुन्द, चमेली, चम्पा, चांदनी, जाती, जपा, जुही, सूर्यमुखी, सदा सुहागल, सुगन्धरा, सुदर्शन, सदाबहार, माधुरी, मालती, माधवी, वासन्ती, वन मल्लिका, स्वर्णयूथी, गुंजा, अपराजिता, विम्बफललता, लवंग लता आदि वृन्दावन वंशी-वट के वैभव को कौन कह सकता है।

मधु के लोभी भ्रमर गुंजार रहे हैं। पक्षीगण अपनी मधुर वाणी सुना कर मानो रस्तागीरों को बुला रहे हैं। यह देखो, कोयल, कपोत और चातक, चकोर, मोर, सारस, हजारा, मैना, नीलकण्ठ, सकटुआ, पपैया, खंजन और श्यामा, चिरैया आदि कैसे फुदक रहे हैं। जहाँ की स्वर्णमयी भूमि है। यमुनाजी के मध्य में रास मण्डप बना है। पद्म पुराण में लिखा है, वृन्दावन के चारों ओर यमुना वहती थी :—

कालिन्दी चाकरोद्यस्य
कर्णिकायाः प्रदक्षिणम् ॥१२३॥

कलिंग पर्वतात् प्रगटिता कर्णिकां परितः संवेष्टय प्रवहति।
(श्री युग्मतत्व समीक्षा)

संगीत शास्त्र सुधा निधि योग माया ने सभी प्रकार के वाद्य एकत्रित कर दिये हैं

यथा-सितार, सारंगी, नस तरंग, जल तरंग, वेला, नफीरी, मुरली, नगाड़े, सहनाई, खंजरी, मजीरा, मृदंग, श्री मंडल, सुरमन्दार, घन्टा, घड़ियाल, तमूरा, तुम्बरु, वीणा, तुरई, झालर, ढोल, ढप, मदन मंजरी, मदनभेरी, धोंसा, कटोरा, दुन्दुभि आदि सभी बाजे सजा कर रख दिये। चारों ओर चार सरोवर जिनमें अमृत समान जल भर रहे हैं।

रास यज्ञ महोत्सव के समाचार मिलते ही गांव-गांव से गोपियाँ आ रही हैं। यह व्रज के गाँवों के नाम हैं :—

भूषण वन, निम्बार वन, गुंजा वन, कोकिला वन, वच्छ वन, पीपर वन, लोहवन, बहुला वन, भद्र वन, वेल वन, लाल वन, मधुवन, ताकमोद वन, विलास वन, भाण्डीर वन, महावन, कामवन, वृन्दावन, खिदिर वन। नन्द घाट: गौ घाट, चीर घाट, केशी घाट, ब्रह्मांड घाट, सूर्य घाट, शेरगढ़ शान्तनु कुन्ड, सुरभी कुण्ड, अप्सरा कुण्ड, कृष्ण कुण्ड, राधा कुण्ड, माधुरी कुण्ड, नारद कुण्ड, हरजी कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, राम-कुण्ड, दोहनी कुण्ड, श्याम कुण्ड, उद्धव कुण्ड, जतीपुरा, गोवर्धन, आन्योर, कुसुम सरोवर, प्रेम सरोवर, भानोखर, चित्रवन, विचित्र वन, लाल बाग, सेखसाई, हथोरा, रीठा, कारव, रावल, गोपालपुरा, जसोली, मांट, आंठ, आठस, छटीकरा, नरीसेमरी, वेठन, करहला, नन्दगांव, ऊँचा गांव, वरसानो, चिकसोली, जहांगीरपुर, सुनहरा, दीघम, पीरीपोखर, ब्रह्मदेव, चरन पहाड़ी आदि। गाँवों का कहाँ तक वर्णन किया जाय, व्रज के कौने-कौने से गोप सुन्दरियाँ आ रही हैं। उनके कुछ नाम भी आपको सुनाते हैं।

इन्दुमती, वसुमती, भोगवती, विलासमति, मानवती, कमलारति, प्रेमरति, सुगन्धरा, मनोहरा, मेन नागरा, चारु-कवरा, मन्दिरा, सुचिरा, गान्धर्विका, कामलिका, केशिका, सुगन्धिका, सुभद्रिका, रामलिका, चन्द्रिका, माधुरी, प्रेम मंजरी, प्रेम मोहिनी, संजीवनी, सुमेधिका, केशवी, माधवी, जयदेवी, सहदेवी, श्रीदेवी हीरा छवि, पद्मावति, अलखनन्दा, प्रियम्वदा, मित्रविन्दा मन्मथ मोदा, विष्णु कान्ता, सुभद्रा,

सुखदा, प्रेमलता, चन्द्र कला, विमला, सुमंगला, शशिकला, विचक्षणा, देवदत्ता, सुन्दरी, कावेरी, कुमारी, कुंजरी, देवरूपा, मधुरेखा, गंधरेखा, रतिमध्या, सुभानना, कुलसंती, चपल नेत्रा, तुंगभद्रा, मंजुघोषा, वासवदत्ता, चन्द्रप्रभा, शान्ता, मानवी, रूप रेखा, सुरसुन्दरी; ज्येष्ठा, श्रेष्ठा, करुणा, अरुणा, सुरुपा, विमला, शान्ति, कान्ति, कृष्णा, गुण सुन्दरी, चपला, चंचला, चारुमती, सुकेशी, सुनीता, विनीता, वीणावादिनी, इन्दिरा, कमला, गायत्री, सावित्री, सुकला, मँगला, अरुन्धती।

शत सहस्र यूथ गोपियों के नाम कहाँ तक लिख सकते हैं। रासमण्डल के चारों ओर चार सरोवर हैं :—

(१) सिद्ध पदा सरोवर,
(२) प्रेम रस सरोवर,
(३) पुष्करिणी सरोवर,
(४) मलय निविड़ सरोवर।

बीच में श्यामा श्याम का सिंहासन है। आठ सखि प्रभु की सेवा में उपस्थित हैं :—

(१) श्री रंग देवीजी (२) श्री सुदेवीजी
(३) श्री ललिताजी (४) श्री विशाखाजी
(५) श्री चम्पक लता (६) श्री तुंग विद्या
(७) श्री इन्दुलेखा (८) श्री चित्रा।

इनको युगलकिशोर की सेवा का अधिकार है। समय-समय पर यह सखियाँ सब सामिग्री एकत्रित किया करती थीं।

वृन्दादेवी ने रास मण्डल की पूरी रचना कर दी है तथा ब्रजकिशोरीगण भी सभी अपने-अपने स्थानों पर सुशोभित

हो रही हैं पर रास रासेश्वरी श्री वृषभानुनन्दनी राधा जी अभी तक नहीं आई हैं। श्री शुकदेवजी ने जो कहा है कि :—

एकाभ्रुकुटिमावध्य
प्रेम संरम्भ विभ्रमाः
धनन्ती वैक्षत्कटाक्षेपै
सन्दष्टदशनच्छदाः ॥ १२४॥

भगवान श्री कृष्ण के आने पर जो गोपी भ्रकुटि चढ़ा कर दाँतों से होठों को दबा कर प्रणय कोप से व्याकुल होकर एकान्त में बैठी कटाक्षों के आक्षेप से ताड़ना कर रही है। वह श्री कृष्ण के पास नहीं आई है वह मानिनी राधा है। यह मानिनी गोपियों में सर्वश्रेष्ठ है।

चपला सखि ने आकर कहा—श्यामसुन्दर, वह मानिनी राधा सेवा कुंज में मान करके बैठी है, आप चल कर पहिले राधाजी को मनावें। श्याम सुन्दर बोले—सखियो, तुम ही जाकर उनको लिवा लाओ। इतना कह कर हमारे प्रभु विह्वल हो गये और कहने लगे—राधे राधे राधे नेत्रों से अश्रु विन्दु टपक रहे हैं तथा बार-बार चपला सखि की ओर देख रहे हैं। चपला जी कह रही हैं श्यामसुन्दर, आप इतने अधीर क्यों हो रहे हो।

विरह विषाद दूर कर डारो,
नैक धीर अपने मन धारो।
काहे को कदरात विहारी,
मैं ल्याई वृषभानु दुलारी ॥

चपला जी के वचन सुनकर, प्रभु कहने लगे—मेरी प्रिया

राधा, कहाँ है, आप जल्दी बताओ, कहाँ है वृषभानु राज-दुलारी ? चपला जी ने कहा—मैं अभी राधारानी को लाती हूँ। इतना सुनते ही श्यामजी के (नयन सरोज नीर भर आये) उसी समय एक सखि ने कहा—(आवत प्रिया अबई वनवारी) ऐसा कह कर सखियाँ सेवा कुंज की ओर राधाजी के लिवाने को चल दीं।

श्यामसुन्दर आज बड़ा पश्चाताप कर रहे हैं और गोपियों से कह हैं। सखियो, आज वृषभानु राजदुलारी इतना मान करके क्यों बैठी है ? मैंने तो उनका कोई अपराध भी नहीं किया है।

श्री श्यामसुन्दर ऐसा कहते-कहते प्रिया के विरह में अत्यधिक व्याकुल हो गये।

राधा विरह विकल गिरधारी।
कहूं माल कहूं मुरली डारो॥
कहूं मुकुट कहूँ पीत पिछोरी।
नहिं कछु सुरति भई मति बोरी॥

आपकी ऐसी अवस्था देख कर सखियाँ प्रभु से प्रार्थना कर रही हैं। श्यामसुन्दर देखो, चपला जी राधाजी को अवश्य लेकर आयेंगी। चपला के साथ कुछ देवियाँ सेवा कुंज में पहुंच गईं। वह सब राधाजी से प्रार्थना कर रही हैं। इस पर श्री हित हरिवंशजी का सुन्दर पद है ;—

चलोरी क्यों ना मानिनि कुंज कुटीर
तुम बिन श्याम कोटि बनता युत
मथत मदन की पीर। चलो०

गद्गद् सुर विरहाकुल पुलकित
श्रवत बिलोचन नीर । चलोरी०
क्वास क्वास वृषभानु नन्दिनी
विलपत विपिन अधीर । चलोरी०
बंशी विसद् व्याल उर माला
पंचानन पिक कीर । चलो री०
हित हरवंश परम कोमल चित
चली चपल तिय तीर । चलो री०
सुन भयभीत व्रज को पुंजर
सूरत सूर रणवीर । चलो री०

कैसे सुन्दर दिव्य भावों से भरा हुआ श्री महा प्रभु का पद है। व्रज सुन्दरियों को इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी जब मानिनी राधा का मान कम नहीं हुआ। तब स्वयं श्री कृष्ण चन्द्र मानिनी राधा के मनाने को सेवा कुंज में पधारे। कहते हैं सेवा कुंज में ही ऐसा भाव है कि श्री राधाजी ऊँची बैठी हैं और श्री कृष्ण जी नीचे बैठे हैं। वह माननी राधा को मना रहे हैं :—

उठो अब मान तजो गोरी
सदा सों तुम मन की भोरी
रही अब रैन वहुत थोरी
कहूँ मैं शपथ खाय तोरी

इतने पर भी राधाजी जब मान करती रही तब तो श्री कृष्ण अति दीन होकर बोले :—

अपनी ओर निहार कें, देऊ अभय वरदान ।
क्षमा करो अब चूक सब, जो कछु भई अजान ॥

तू तो मोहे प्राणन ते हू प्यारी राधे
भूले मान न कीजिये सुन्दर ।
हों तो शरण तिहारी ॥ राधे०
नैक हंसे चित बोलिये राधे ।
खोलिये घूघट सारी ॥ राधे०
कृष्णदास हित प्रीत रीत वश ।
भर लिये अंकन वारी ॥ राधे०

इस प्रकार रास बिहारी की अति दीन अवस्था देख कर श्री राधाजी के नयन भर आये और उठ कर एकाएक श्याम-सुन्दर से लिपट गई। आनन्द विभोर हो गई वह प्यारे के लाड़ से विह्वल होकर उनकी वंशी से प्यार करने लगीं और बोलीं—श्यामसुन्दर, आज आपकी बंशी मैं बजाऊँगी। थोड़ी देर को आप इसे मुझे दे दीजिये :—

श्याम तेरी वांसुरी नेक बजाऊँ
जो तुम कहो मुरली मैं सोई सोई
गाय सुनाऊ
हमरे भूषण तुम सब पहरो
हों तुमरे सब पाऊ
हमरी विदरी तुमही लगाओ
हों शिर मुकुट धराऊ

तुम दधि वेचन जाऊँ वृन्दावन
हों मग रोकन आऊँ
तुमरे शिर माखन की मटुकिया हो
हों मिल ग्वाल लुटाऊँ
माननी होकर मान करो तुम
हों गह चरण मनाऊँ
सूर श्याम प्रभु तुम जो राधिका
हो नन्दलाल कहाऊँ
श्याम तेरी बांसुरी नेक बजाऊँ

श्री श्यामसुन्दर तथा श्री वृषभानु नन्दनी राधा दोनों ही नृत्य भाव में गोपी मण्डल में आ गये हैं। भगवान रासबिहारी एवं रास रासेश्वरी के आते ही जय जयकार होने लगा। एक साथ ही नाना प्रकार के वाद्यों की स्वर लहरी सुनाई पड़ने लगी।

योगेश्वर भगवान आज अनेक रूप से गोपियों में विराजमान हैं। उस समय कामदेव ने भी युद्ध का नगाड़ा बजा दिया। अब श्री कृष्ण इस घेरा में से निकल कर नहीं जा सकते। अब जल्दी ही अपने बाणों से इसको परास्त कर दूंगा। वह अभिमानी यह नहीं समझ रहा कि भगवान अभी क्या-क्या लीला रचेंगे। रासोत्सव का समय हो गया। दुन्दुभि घोष होने लगा। वीणाओं की झनकार से मण्डल झंकृत हो रहा है। चारों ओर से एक साथ ही नूपुर ध्वनि गूंजने लगी।

वलयानां नूपुराणां
किंकड़ीनाच योषितां

सप्रियाणामभूच्छद्म
स्तुमुलो रास मण्डले ॥१२५॥

यहाँ पुरुष तो केवल एक श्री कृष्ण हैं बाकी सब गोपियां हैं। कारण :—

रास प्रवेशस्तस्यैव
येन राधा प्रपूजितः
इद मेवाधि दैवत्यं
तद्वारा कृष्णतो यदि ॥१२६॥

रास में तो वही प्रवेश कर सकता है। जिसने श्री वृषभानु राजदुलारी राधाजी की पूजा की है। पर एक पुरुष ने भी मण्डल प्रवेश का साहस किया है वह हैं श्री भोलानाथ ब्रज विलास में यह चरित स्पष्ट है।

मुदा गोपेन्द्रस्यात्मज भुज परिश्वङ्गविधये,
स्फुरद्रोपी वृन्दै र्यमिह भगवन्तं प्रणयिभिः।
भवद्भिस्तैर्भक्तया स्वभिलषितं प्राप्तमचिराद्,
यभीतीरे गोपीश्वरमनु दिनं तं किलभजे।

यह गोपीश्वर महादेव का ध्यान है। रासारम्भ में जो दुन्दुभि घोष हुआ था वह सभी जगह फैल गया था। उस समय हिमाचल राजदुलारी पार्वती जी उस रासोत्सव के दर्शनों के लिए चल दी। रास यज्ञ में जाने को पार्वती ने आज अपना शृंगार भी अपूर्व किया है। पार्वतीजी जा रही हैं। शंकर जी ने उनको टोक दिया। प्रिये आज सजधज कर कहाँ जा रही हो। ऐसा शृंगार तो पहिले कभी नहीं किया।

पार्वती जी बोली—भोलानाथ, आपको कुछ मालूम है कि आज वृन्दावन बंशीवट कालिन्दी तट पर महारास हो

रहा है। मैं उसी के दर्शन करने जा रही हूँ। शंकर जी ने कहा—तब तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। पार्वती—हे शम्भो, वहाँ आपको स्थान नहीं मिलेगा कारण वहाँ स्त्रियों का राज्य है पुरुष तो एक श्री कृष्णजी ही रहेंगे शंकर जी ने कहा—तब तो मुझे वहाँ कोई नहीं रोक सकता। पार्वती—अजी, वहाँ श्री कृष्ण को कौन पूछता है। वहाँ तो सर्व यूथेश्वरी एक मात्र राधा का ही साम्राज्य है उनके बिना एक पत्ता नहीं हिल सकता। शंकरजी—अरी, रहने दे इन बातों को श्री कृष्ण मेरे सच्चे साथी है और मैं उनके प्रभाव को जानता हूँ मुझे कोई नहीं रोक सकता। ऐसा कह कर दोनों ही रास मण्डल की ओर चल दिये।

रास मण्डप के द्वार पर द्वारपाल खड़े हैं। राधारानी की विश्वास पात्र सखि ललिता एवं विशाखा ही पहरा दे रही हैं। पार्वती जी तो मण्डप में आदर के साथ चली गईं पर शंकर जी को रोक दिया। आप भीतर नहीं जा सकते। शंकर जी अपना सा मुँह लेकर लौट दिये। श्यामसुन्दर होते तो उनसे कुछ बात भी करते स्त्रियों से भोलानाथ क्या बात करें। पार्वजी ने देखा, स्वामी हताश होकर लौट गये। तब पार्वती जी ने आकर कहा—भोलानाथ रास देखना चाहते हो। शंकर जी बोले—रास देखने की बड़ी प्रबल इच्छा है पर अब अपमान का भय है। कारण श्यामसुन्दर नहीं मिले। पार्वती जी बोली—नाथ, रास मण्डल का मार्ग कठिन है। यहां दान, व्रत तप, यज्ञ कोई भी सहायक नहीं हो सकते। कारण वृन्दावनाधिपत्यं तु दत्त तस्यै प्रतुष्यता—राधावृन्दावने वने यहाँ की मालिकनी तो राधा ही है।

अधिकारस्तु तस्यैव या स्त्रीत्व तु समाचरेत्। नान्यस्य तपसा भक्त्या दानेन क्रिययाऽथवा।

हां, मैं आपको एक उपाय बता सकती हूँ। आप स्त्री का रूप धारण कर लें फिर आपको कोई नहीं रोक सकता। उस समय रासोत्सव देखने के चाव से प्रभु ने स्त्री का रूप धारण कर लिया तथा पार्वती जी ने उनका शृंगार किया। अब तो वह सर्वांग सुन्दरी दिव्य भूषा विभूषिता गौरांगी गुण सुन्दरी पार्वती के साथ रास मण्डप की ओर चल दी। ललिता, विशाखा उस गुण सुन्दरी को देखती ही रह गई। सोचने लगी यह कोई देवलोक से आई है।

नवीन अवस्था सर्वांग मनोहरी उज्बल सचिकण जिसका शरीर चन्द्रमा जैसा मुखारविन्द, मृग के से नेत्र, कमान सी भृकुटी, श्यामसटकारे घूंघर वाले श्याम छल्लानदार अलकावली, कपोत की सी ग्रीवा, जिसमें शंख की सी रेखा पड़ी हुई हैं। तिल पुष्प सी सूआ सारी नासिका, आरसी जैसे गोल कपोल, कन्दूरा जैसे लाल-लाल ओष्ट, कुन्दकली से दाँत, सुवर्ण कलश जैसे उरोज, त्रिवली दार उदर, गम्भीर नाभि सिंह की सी कमर, सुढार भुजयुगल लाल कमल जैसे हाथ, कमल जैसे कोमल चरण जिनमें चमकदार महावर लगी हुई है। माणिक जैसे नख, नारंगी जैसी एड़ी, हंस की सी चाल, कोयल के समान कण्ठ गहरे रंग की साड़ी जो गोटा किनारो से शोभायमान थी। चन्द्रहार मस्तक पर बेना वन्दी कंकड़ नूपुर कन्धनी से सुसज्जित, गुण सुन्दरी को द्वार पर आते देख व्रज देवियाँ आश्चर्य में भर गई। उसका सौन्दर्य, माधुर्य, औदार्य एवम् अतुल सौभाग्य देख कर आदर सन्मान के साथ रासबिहारी के पास ले गई किन्तु सातवीं ड्योढ़ी पर एक

द्वारपाल को सन्देह हुआ कि यह पुष्ट देह वाली कोई अपरिचित है। उसको उस परिचारिका ने रोकना चाहा पर श्री कृष्ण चन्द्र ने हाथ बढ़ा कर उसका स्वागत किया और बोले गुण सुन्दरी इस रास नृत्य की श्री गणेश तो आपके ही द्वारा होगा। आपने बहुत देरी कर दी ऐसा प्रभु के कहते ही एक साथ बाजे बजने लगे। महादेव जी बड़े संकोच में पड़ गये, पर क्या करे। रास रासेश्वर की आज्ञा कि प्रथम नृत्य आपका ही होगा।

नन्न नन्दन रास रच्यो
आये त्रिपुरारी सखि, आये त्रिपुरारी । नन्द०
हिचक झिझक पग धरत, कहूँ को पग कहूँ परत,
जटा काढि मांग गंग की निकारी । नन्द०
बेंदी माथे विशाल चूनर ओढ़ी है,
लाल मनमानी चले चाल, तीन नयनवारी । नन्द०
देखे जब नन्द लाल हंसकें बोले गुपाल,
आयो गोरीश ईश शीश गंगधारी ॥
नन्द नन्दन रास रच्यो आये त्रिपुरारी सखि आये त्रिपुरारी

शङ्कर जी बड़े संकोच से नृत्य कर रहे हैं, पर उनका यह संकोच नृत्य की शोभा बढ़ा रहा है। श्री कृष्ण चन्द्र ही इस रहस्य को जान सके। प्रभु कह रहे हैं आप गोपेश्वर हैं तभी से वंशीवट पर गोपेश्वर महादेव विराजमान हैं। उनका शृङ्गार भी सदा गोपियों जैसा होता है। अब श्री कृष्ण चन्द्र नृत्य करने को पधारे। एक साथ बाहर के तथा भीतर के वाद्य बजने लगे तथा गोपियों के आभूषणों की झनकार होने लगी।

कृष्णा हंस कपोत मोर विहगाः
कृष्णाश्चकोरा मृगाः ।
कृष्णा श्री यमुना तदन्तियतटाः
वाप्यश्च कृष्णास्तथा ।
कृष्णा गोकुल मण्डली वन चयं
कृष्णं च सर्वं वनम् ।
श्री कृष्णस्यरुचा किमन्यद्वने
राधापि कृष्णा भवेत् ॥१२७॥

रासबिहारी जी ने जैसे ही रास नृत्य की फिरकैयां लीं कि एक साथ श्याम रस की वर्षा होने लगी, वह रंग सब पर चढ़ गया। वहाँ के रस चकोर, मोर आदि सब पक्षी श्याम दीखने लगे श्री यमुना तट वृन्दावन श्याम लताओं से शोभित्त हो गया। वह सम्पूर्ण गोकुल मण्डली श्याम रंग में रंग गई और तो क्या वह गौर बदन वृषभानु किशोरी भी श्याम सखी जैसी दीखने लगी। यह देख कर गोपियाँ बोलीं– वाह प्रभु, आपने अच्छा काला रंग बरसाया। क्या आपके पास कोई दूसरा रँग नहीं था। उस समय पद्मा बोली—बहिन, कारे को बसियावे।

श्री ललिताजी ने राधारानी को नृत्य करने को खड़ा कर दिया चारों ओर से जय जयकार की ध्वनि गूँज उठी। राधा रानी की जय! राधारानी की जय!! श्यामसुन्दर ने देखा, ओहो! श्री प्रियाजी आ गई। श्री वृषभानु किशोरी की घूंघरु की झनकार से सभी बाजे फीके पड़ गये। रासेश्वरी ने नृत्य प्रारम्भ किया। उसमें तो गौर रस की वर्षा होने लगी, रास मण्डल का रंग बदल गया।

गौरांगा पशुभृङ्ग कोकिलगणा
गौराश्चकोरा मृगाः
गौरा श्री यमुना तदन्तिय तटा
वाप्यश्च गौरास्तदा
गौरा गोकुल मण्डली वन चयं
गौरं च सर्वं वनं
श्री राधाय रुचा किमन्यद्वने
कृष्णोऽपि गौरायते ॥१२८॥

श्री राधाजी की गौर कान्ति के प्रभाव से रास मण्डल चमक उठा। वहाँ के हंस, चकोर; मोर, सारस, कोयल, भौंरा, मृग आदि सब गोरे हो गये। वृन्दावन यमुना तट पर श्यामता छा गई थी। वह गंगा की तरह स्वच्छ, उज्वल, सफेद, गौरवर्ण की दीखने लगी। गोकुल मण्डली गौरवर्ण की हो गई और तो क्या भगवान श्री कृष्ण चन्द्र भी गोरे ग्वाल जैसे दीखने लगे। इस नृत्य के प्रभाव को देखकर गोपियां तालियाँ बजा कर कहने लगी—जय राधे जय राधे तुम धन्य हो तुम धन्य हो। राधेजी काले रंग पर किसी रंग का प्रभाव नहीं पड़ता पर राधे आज आपकी विजय हो गई।

छांडि मन हर विमुखन को संग
जिनके संग कुबुद्धि उपजत
परत भजन में भंग। छांड़ि
कहा होत पय पान कराये
विष नहिं तजत भुजंग। छां०
कागहि कहा कपूर चुगाये
श्वान नहाये गंग। छां०

खरको कहा अरगजा लेपे
मरकट भूषण अंग । छां०
सूरदास प्रभु कारी कामर
चढ़त न दूजो रंग । छां०

पर आज तो कारे पर गोरा रंग चढ़ गया। इससे बड़ी विजय और क्या होगी व्रज देवियों का उल्लास बढ़ गया अब सब एक साथ मिल कर नृत्य करने लगीं।

* अथ गानम् *

जय कृष्ण मनोहर योगतरे
यदुनन्दन नन्द किशोर हरे
जय रास रासेश्वर पूर्णतमे
वरदे वृषभानु किशोर हरे

जयतीह कदम्ब तले ललितः
कल वेणु समीरित गान रतः
सहि राधिकया हरिरेकमतः
सततं तरुणी जन मध्यगतः
वृषभानु सुता परमा प्रकृतिः
पुरुषो व्रजराज सुतः सुकृतिः
इह नृत्यति गायति वाद्यते
सह गोपिकया पुलिने रमते
यमुना पुलिने वृषभानु सुता

नवनीत लतादि सखी सहिता
रमते हरिणा सह नृत्यरता
गति चंचल कुंडल हार रता
वृषभानु जया सह कुंज वने
यदुनन्दन येति सुखे विजने
व्रजमोहन नागर वीर वरः
परि रम्भन चुम्वत दान परः
जय कृष्ण मनोहर योगतरे
यदु नन्दन नन्द किशोर हरे

॥ श्री रास रासेश्वर भगवान की जय हो ॥

*** नृत्य की शोभा ***

चरणन की धरन; नूपुरन की वजन, झाझन की ठमकन और दामन की छूमन और मोतिन की लूमन, कमर में कन्धनी की खरकन, मोतीमाला की दमकन, जिसमें जड़ाऊ पाटियान की चमकन, गोरी गोरी भुजान में वाजूबन्द की फसन। मुख पर श्याम अलकावली की छूटन, कानन में कुण्डलन की हलन, मन्द मुसकान की चितवन, वैनाबन्दी की सजन; नासिका की चढ़न, अधरन की फड़कन; उदर में त्रिवली की परन ललित त्रिभग की विलसन, मुरली की धरन, अँगुली की नचन, आनन्द की उमगन, पीतपट की चटकन। आधमा की चढ़न, यह नृत्य का भाव है। नाचते समय उनकी ऐसी पतली कमर ऐसी लचक जाती थी मानो दो लड़ हो गई है। झुकना, बैठना, उठना, चलना, बड़ी फूर्ती से उछरना तथा स्तनों का हिलना, वस्त्र उड़ रहे हैं। कानों के कुण्डल हिलकर कपोलों

पर लटक रहे हैं। परिश्रम से मुख पर पसीना टपक रहे हैं। केशों की चोटियाँ ढीली पड़ गई है। नटवर लाल की परम प्रेयसी गोपियाँ नृत्य में मग्न हो रही हैं। श्री कृष्ण चन्द्र का संस्पर्श आपके रोम-रोम को खिला रहा है।

उस समय गन्धर्व पति मुख्याधिकारी सस्त्रीक भगवान के निर्मल यश का गान कर रहे है।

नमस्त्वां सुहारं यशोदा कुमारं
गुणानामगारं कृपाद्यैरपारम्
विराजद्विहारं प्रदानेत्युदारं
खल श्रोणिदारं सदा निर्विकारम् ॥१२६॥

तासां तस्य च अमलं कामादि वासना निरसनम्। रासोत्सव दर्शन एवं श्रवण करने से विषय वासना का नाश होता है।

इस महारास का वैभव ही अद्भुत है। राजोपचार सामिग्रियों से भरपूर है। जहाँ नाना विध निकुंज बनाई गई हैं। मणि निकुंज जहाँ मणियों का वैभव है। पुष्प निकुञ्ज जहाँ पुष्पों का सौन्दर्य है। भावना निकुन्ज जहाँ वासना का निराकरण है। पहिले मणि निकुन्ज का ही वर्णन करते हैं।

जहाँ पिरोजा का परकोटा, मूंगा की बनी मुडगेली, वैदूर्य के बने द्वार, माणिक के किवार, कौस्तुभ की कील, चुन्नी की चोखट, गोमेद के दासे वैदूर्य की वारहद्वारी, चन्द्रकान्त की चांदनी, विल्लोर के फरस, नीलमणि के खम्ब, हीरा के हटरा, कोस्तुभ के कलश लग रहे हैं। लता पताओं से शोभायमान यह मणि निकुन्ज है। इसमें प्रिया प्रियतम का शृङ्गार भी मणियों से किया गया है।

मणि निकुन्ज में रक्षक भी चारों ओर घूम रहे हैं। अच्छा प्रबन्ध है पर वहाँ एक आश्चर्यजनक घटना हो गई। यहाँ गोपियों का साम्राज्य है। पुरुष तो एक श्री कृष्ण जी ही फस रहे हैं। भोलानाथ तो स्वयं अपने को संकोच वश छिपा रहे हैं।

उस समय गोपियों ने विचार किया आज इस बांसुरी को छिपा दो।

चोरो सब बंशी आज दाव भलो पायो है,
यह उपकार प्यारी सदा मानेगी।
गोरी राग सावरो रिझायो है।
बहुत अधरामृत चुवाओ श्याम मुरली बीच,
दिन दिन की कसक आज काढ़ पायो है।
रसिक पीतम जो विनती करै हजार बार,
तोऊ वा बांसुरी को भेद ना बतायो है।

विचार तो गोपियों का बन गया पर बंशी को चुराने का किसका साहस है। उस समय राधारानी से हो प्रार्थना करी यह काम आप कर सकती हो। गोपियों के मनो भाव जान कर एक बड़े मनोविनोद के उद्देश्य से श्री किशोरी जी ने बड़े साहस से यह काम किया। गोपियाँ प्रसन्न हो रही हैं और कह रही हैं—बहिन, आज इसमें ऐसी मार लगाओ जो श्यामसुन्दर को छोड़ कर चली जाय देखो बहिन, यह श्यामसुन्दर का अधरामृत पान करके कैसी मोटी हो गई है। अब तो बंशी में चारों ओर से मार पड़ने लगी। उसकी बोलती गोपियों ने बन्द कर दी और कहने लगी।

बांसुरी तू कब न गुमान भरी ।
सोने की नाही रूपे की नाही,
नाही रतन जड़ी । बांसुरी तू०
जात सिकत तेरी सब कोई,
जाने मधुवन की लकड़ी । बासुरी तू०
क्यारी भयो जब हरिमुख लागी,
वाजत विरह भरी । बांसुरी तू०
सूर श्याम याको का करिये,
अधरन लागतरी । बांसुरी तू०

बांसुरी की चोरी हो गई है और उसमें मार भी पड़ रही है। बांसुरी के बिना प्रभु का जी व्याकुल हो रहा है। बार-बार पटका की परौट को टटोल रहे हैं। हाय ! आज बांसुरी कहाँ गई। किससे पूछूँ यहाँ तो इन सखियों का ही राज्य है इनका ही बहुमत है भगवान आज सब रास रंग भूल गये। जिस बाँसुरी को एक क्षण के लिए नहीं छोड़ते थे। कमर में कसके रखते थे। उसकी आज चोरी हो गई। प्रभु की ऐसी दशा हो गई। एक पग भी चलने में असमर्थ हैं। आपने विचारा कि नम्रता से ही काम चलेगा। यहाँ मेरा कोई सहायक नहीं है।

श्यामसुन्दर एक-एक गोपी से प्रार्थना करने लगे। देवियो, मेरी बंशी देखो होय तो बतादो। गोपियों का संगठन दृढ़ था। इस भेद का कोई स्रोत नहीं मिला। आज प्रभु, धोके में आ गये। ऐसी भूल आपसे कभी नहीं हुई। आप गोपियों की खुशामद कर रहे हैं और कहने लगे।

कौन बसत या वृन्दावन में.
या बंशी को चोर ।
जानी नही लई काऊ कर में,
कर में उरसी जोर ।
चोरी नहीं वर जोरी एरी,
प्यारी मो मुरली को चोर ।
राजा को ही दिये बनेगी,
यही न्याव की तोर ।

जब किसी ने मुरली का रहस्य नहीं बताया तब आपने समझ लिया यह काम राधा का ही है और किसी का इतना साहस नहीं हो सकता राधा की विनती करने से ही काम बनेगा। आप राधा को मनाने लगे।

मुरलिया जो पाऊँ तो मैं तेरे ही गुण गाऊँ।
सुनहु कुमरि किशोरो राधे ।
श्री राधे राधे गाय सुनाऊँ ।
मुरलिया जो पाऊँ तो तेरे ही गुण गाऊँ।
चरन छुवाय कहत हों तुमसो।
तेरो ही ध्यान लगाऊँ।
यह विनती भलि हार विहारिन।
तेरे ही हाथ विकाऊ। मुर०

इस प्रकार श्यामसुन्दर की दीनता एवम् करुण अवस्था देखकर श्री प्रियाजी का हृदय भर आया। उनने बंशी निकाल कर दे दी। फिर श्यामसुन्दर ने बड़े मधुर भजन सुनाये।

जयति जय राधा रसिकमनि मुकुटमनहरणी प्रिये ।
पराभक्तिप्रदायनी करि कृपा करुणानिधि प्रिये ! परा० ॥१॥
जयति गौरी नव किशोरी सकल-सुख-सीमा प्रिये ॥२॥
जयति रतिरसवर्द्धिनी अति अद्भुता सदया हिये । परा० ॥३॥
जयति आनन्दकन्दिनी जगवन्दनी वरवन्दनिये । परा० ॥४॥
जयति श्यामा अयितनामा वेदविधिनिर्वाचिये ! परा० ॥५॥
जयति रासविलासनी कलकलाकोटिप्रकाशिये । परा० ॥६॥
जयति विविधविहारकवनी रसिकरवनीं शुभध्रिये । परा० ॥७॥
जयति चंचलचारुलोचन दिव्यदुकूलाभरनिये ! परा० ॥८॥
जयति प्रेमा प्रेमसीमां कोकिलाकलगैनिये । परा० ॥९॥
जयति कांचनदिव्यअङ्गी नवलनीर जनैनिये । परा० ॥१०॥
जयति वल्लभ वल्लभा आनन्दकलाभातरुनिये । परा० ॥११॥
जयति रावलपतिकुमारी नन्दबालवधूटिये । परा० ॥१२॥
जयति नागरगुण उजागर प्रानधनमनहरनिये । परा० ॥१३॥
जयति नूतननित्यलीला नित्यधामनिवासिये । परा० ॥१४॥
जयति गुणमाधुर्य्यभूसा प्रेम रूपा शक्तिये । परा० ॥१५॥
जयति शुद्धस्वभावशीला श्यामला सुकुमारिये । परा० ॥१६॥
जयति यशजगप्रचुरपरिकर श्रीहरिप्रिया जीवनजिये। परा०॥१७॥

गोपियाँ श्यामसुन्दर के साथ मणि निकुन्ज का वैभव देख कर कहने लगीं। प्रभु इससे बड़ा सुख और कहाँ मिल सकता है। प्रभु ने कहा देवियो मैंने भी एक कुन्ज बनवाई है। आओ उसका भी सुख वैभव अनुभव करो व्रजसुन्दरी बड़े

चाव से उनके साथ चल दी। आपने उनको एकान्त में जंगल में ले जाकर बैठा दिया।

सखियाँ हँस कर बोलीं—प्रभु, यही आपकी निकुन्ज रचना है। एक बोली--बहिन, ग्वारिया को जंगल ही सुहाता है। एक गोपी ने कहा--श्यामसुन्दर, इस निकुन्ज का क्या नाम है। श्यामसुन्दर कहने लगे—यह भावना निकुन्ज है। यहाँ के जीव समान भाव से रहते हैं। यहाँ ध्यान की धरती है और प्रीती के परकोटा हैं। इसमें नम्रता की नीम लगी है। यहाँ भावना की भीत है और चाहना की चौखण्डी है इसमें दास्यता के द्वारे हैं और चितवन की चौखट है। कीर्तन के किवार जिनमें कृपा की कील जड़ रही है। दया के दास बने हुए हैं तथा खुशी के खम्ब एवं मोक्ष की महराव लगी हुई हैं। भक्ति के भवन हैं अर्थ के आले हैं। वचन जाल की जारी हैं और हर्ष के हटरा एवं आह्लाद की अटारी बनी हुई हैं और चातुरी की चित्रशाला तथा कल्पना के कोठे और मोह की मुड़गेली बनी है महिमा के मिरगोल, मन के महल कटाक्ष के कलश रखे हैं धर्म की ध्वजा लग रही है तथा प्रेम की पताकाओं से सुशोभित है। जहाँ प्रीति का पलंग बिछ रहा है जिसमें प्रेम के पाये हैं तथा नीति की निवाड़ कस रही है। जहाँ ज्ञान के गद्दा बिछे हैं स्नेह की इस कुन्ज में सोठ बन रही है और चाहना की चांदनी तन रही है यह सुखमयी भावना निकुन्ज है

यत्र नैसर्गदुर्बैरा
सहासन् नृमृगादयः
मित्राणीवा जितावास
द्रुतरुट् वर्षकादिकम् ॥१३०॥

यहाँ के जीवों के मन में वैर भाव की वृत्ति कभी नहीं आती यहाँ तो जो स्वभाव से ही बैर मुक्त हैं। जैसे मनुष्य व्याघ्र। बिडाल मूषक। सर्पनकुल। यह शत्रु भाव परायण है पर इस निकुन्ज में तो सब मित्र भाव से ही रहते हैं।

अहं निसर्ग ते जीव सब
वैर भाव बिसराय
वसहि जहां सुख सों सदां
प्रीति अधिक अधिकाय ।।१३१।।

गोपियाँ जब भावना निकुन्ज में श्री कृष्ण चन्द्र के साथ पधारी पर उसे देख कर आश्चर्य में पड़ गई। बावरी सी हो गई कि श्यामसुन्दर हमको कहाँ ले आये हैं। यहाँ तो ध्यान धारणा धरती और ज्ञान भावना भक्ति के सिवाय और कुछ नहीं दीखता। हाय! कैसी जगमगाती ज्योति में से निकाल कर इस साधुओं की धूनि लगाने के स्थान पर ले आये हैं। यहाँ किसका मन लगेगा, उसी समय वहाँ लक्ष्मी जी भी एक कमल पुष्प हिलाती चली आई। सामने से सरस्वती जी भी वीणा पुस्तक माला लेकर आ गई कैसा रंग में भंग पड़ गया। देखते ही देखते झोली गोमुखी तथा कमण्डलु के ढेर लग गये और वीणा से मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी :—

बहुत गई थोड़ी रही
नारायण अब चेत
काल चिरैया चुग रही
निशदिन आयु खेत
नारायण सुख भोग में

तू लम्पट दिन रेन
अन्त समय आयो निकट
देख खोल कें नैन
नारायण संसार में
भूपति भये अनेक
मैं मेरी करते रहे
लै न गये तृण एक

ब्रजकिशोरी गण आँख फाड़-फाड़ कर देखने लगीं। यह क्या हो रहा है हम क्या देख रही हैं। उन सुन्दरियों के सामने बड़ा संकट आ गया। उसी समय सिद्धियाँ आ गई वह उन सुकुमारियों को झोली बांटने लगी और एक और सुन्दर रंगीली गौमुखी बांटने लगीं। पुस्तकें भी रंग बिरंगी मन को लुभाने वाली बटने लगीं। जिसको जो पसन्द है अपनी इच्छानुसार ले लीजिये यह सब लीला देख कर गोपियाँ घबड़ा गईं।

पर एक ब्रजकिशोरी चतुरा समझ गई यह कोई चाल है। इस भावना निकुन्ज में लाकर हम सबको वैरागिन बनाने का रूपक मालूम दे रहा है। उस चतुरा गोपी ने आगे बढ़ कर वह झोली तथा मालाओं को समेट कर बाहर ले आई। वहाँ बड़े वैष्णव साधु सन्त भगवदर्शनाभिलीषी खड़े हुए थे। उनको रास मण्डल में घुसने का तो अधिकार नहीं था पर बांसुरी की तान सुन कर एकत्रित हो गये थे।

उस चतुरा ने विरक्त वैष्णवों को उनकी इच्छानुसार प्रसाद रूप में वह झोलियाँ बाँट दीं तथा गृहस्थ वैष्णवों को

उनकी इच्छानुसार गौमुखी बांट दी तथा कुछ साधुओं को कमण्डल दे दिये तथा ब्रह्मचारियों को पुस्तक बांट दीं श्याम सुन्दर भी यह लीला देखते रहे। गोपियाँ आकर बोलीं—श्याम सुन्दर यह वैरागियों की निकुन्ज हमको पसन्द नहीं है। हम तो आपके स्नेह की प्यासी है।

नीरव नीरस निर्जन निर्मम
निद्रित निशा जगादो श्याम
शुभ्र चन्द्र की सुभग ज्योति में
ललित कला बरसा दो श्याम
सूर्य सुता पर स्वर लहरी में
तरल तरंग उठा दो श्याम
कण कण वन उपवन में नूतन
जीवन धार बहा दो श्याम
आज चलो फिर यमुना तट पर
मुरली मधुर बजा दो श्याम
एक बार बस एक बार
आनन्द सुधा बरसादो श्याम
मन्द मन्द मृदु हास सुमन का
सुख सौरभ बिथुरा दो श्याम
मधुर वेणु के मृदु कल रव को
मादक घूंट पिला दो श्याम
एक बार बस एक बार
आनन्द सुधा बरसा दो श्याम
आज चलो फिर यमुना तट पर
मुरली मधुर बजा दो श्याम

श्यामसुन्दर यहाँ से चलो आप हमको वैरागिन बनाना

चाहते हैं। यह तो मुडियान की कुन्ज है यहाँ तो वरागी रहते हैं। श्याम थोड़ी सी असावधानी में यह माला झोली हमारे शिर मढ़ जाती। वह तो अच्छा हुआ साधु सन्त आ गये। वह आपका प्रसाद माथे लगा कर ले गये। वह देखा विरक्त वावा सब झोलियाँ ले गये। वह सब ब्रह्मचारी आपकी पुस्तकों को ले गये। वह कुछ गृहस्थी भक्त गौमुखी ले गये तथा यह सन्यासी महात्मा आपके कम्बल ले गये। हम तो सब वबाल से वच गई। यह सब लीला देखकर एक बार उस कामदेव को भी झटका लगा कि कहीं गोपी इन पोथी मालाओं को न सम्भाल लें फिर श्री कृष्ण को वश में करना असम्भव हो जाता। गोपियों ने कामदेव को फिर मैदान बना दिया और श्यामसुन्दर को भावना निकुन्ज में से निकाल लाई। यह जो धार्मिक पुस्तकें तथा गौमुखी माला झोली एवम् कमण्डल आदि साधु सामिग्री भगवत्प्रसाद है। इनको कोई भागवती ही प्राप्त कर सकता है। सर्वसाधारण के भाग्य में आने वाली सम्पत्ति नहीं है।

चन्द्रानना ने कहा—श्यामसुन्दर, आपने जो हमको मार्ग दिखाया था यह सब बड़े ज्ञानियों का मार्ग है। हम अवलाओं में इतनी बुद्धि कहाँ है जो इसको सीख सकें। श्यामसुन्दर देखो वृन्दाजी ने कैसी सुन्दर पुष्प निकुन्ज बनाई है। सब देवियाँ रास रासेश्वरी राधा एवम् सर्वेश्वर श्री कृष्ण को लेकर पुष्प निकुन्ज में आ गई। यहाँ सभी शोभा पुष्पों से बनाई है।

※ पुष्प निकुञ्ज का वर्णन ※

पीत का परकोटा बना है। दाऊदी के द्वार वने हैं। चमेली की चोखण्डी, दुपहरिया के दासे। जाह को झरप गुल्लाला की

गलता। केतकी के किवाड़। किशन देई की कील, सेवती की सांकर। कुन्द के कुन्दा, केला के खम्ब। मोतिया के मिर-गोल। सहदेई की सोठ, टेसू के तोड़े, छाबरी के छज्जे। मोगरा के मोखा, जाफरा के झरोखा, मदनवान की महराव, जुही की जारी, अरनी के अटा, अनार की अटारी, तुर्रा की तिवारी, चम्पा की चित्र सारी, हार सिंगार के हठरा, पितोनिया की पोरी, सुगन्धरा की सिड्डी, छुई की छाप कुन्द के कमल, पीत की पताका धाय की ध्वजा वेला की वन्दनवार, पितोनिया का पलका, पीत की पाटी, सेवती के सेहरे, कमल के पाये, दुपहरिया की डोरी, गुलाब के गद्दा, चमेली की चादर, गुल सवों के गेंदुआ।

पुष्प निकुन्ज में प्रिया प्रियतम का पुष्पों का ही शृंगार हुआ है।

प्रियाजी का शृङ्गार : चम्पा की चूनरी, लाल कमल का लंहगा, कुन्द की कंचुकी, चमेली की चन्द्रिका, मोतिया की मांग, सूर्यमुखी के शीश फूल, वरबीना का वोरला; वरफ की वन्दिनी, वेला का वेना, वबूना की बेंदी, कदम के झूमका, कमल के कर्णफूल, बसन्त की विचकनी। वासुमती के बाला, नरगिस की नथ, बोरे श्री की भोगली, चान्दनी का चन्द्रहार; इस्क पेच की इकलरी, दुपहरिया की दुलरी, तुर्रा की तिलरी, सुगन्धरा की सतलरी, हार शृंगार के हार, कचनार के कठला, मोतियों की माला, जुही की जौ माला, मरुआ की मोहन माला, तिलहर का तिमनिया, पितोनिया का पंचमनिया, गुलर बांस के बाजू, बोरा श्री के वराप्रीत कमल की पछेली, पितोनिया की पहुंची, दाऊदी के दुआ, अरनी की आरसी, केतकी के कड़े, कमल के कंकड़, छावरी के छल्ला, छुई की

छाप, हार शृङ्गार के हथफूल, केवड़ा की कौधनी, पीत के पायजेब, नागचम्पा के नूपुर, चमेली की चुटकी, अनार के अनवट, सेवती के सांकड़ा, सहदेई की सांट, छुई की छैलखड़ी, जाफरा की झांझन। यह श्री प्रियाजी का शृंगार है।

श्री श्यामसुन्दर जी का शृङ्गार : मोतियों का मुकुट, सोन-जुही की पाग, चमेली की कलंगी, गुल तुर्रा के तुर्रा। कदम्ब के कुण्डल, सेवती का जामा; फिरंग का फेंटा, पीत का पटका, पठार का पायजामा, सुन्दरा की सांकर, केतकी के कड़ूला, मालती की माला, रायवेल की मूंदरी, जुही का जोसन पुष्प निकुन्ज में पुष्पों का ही शृंगार हुआ है। वहाँ के द्वारपालों का भी पुष्पों का शृंगार हो रहा है। बृन्दाजी ने पुष्प निकुंज में प्रिय प्रियतम के झूलने को पुष्पों का ही हिंडोला बनाया है। उस पर श्याम श्यामा दोनों बैठे हैं तथा ब्रजदेवियाँ उनको झुलाने लगी :—

युगलवर झूलत दे गल बाही
बादर बरसे चपला चमके,
सघन कदम्ब की छांही
इत उत पैंग बढ़ावत सुन्दर
मदन उमंगन माही
ललित किशोरी हिंडोला झूलें
बढ़ यमुना लों जाही
युगलवर झूलत दे गल बांही

कितना माधुर्य रस उमड़ रहा है इस हिंडोला लीला में यहाँ सभी सुखदायी ऋतु अपनी-अपनी लीलानुसार स्वयं आ

रही हैं हिंडोला लीला में तो वर्षा ने सबको तरावोर कर दिया है इस समय उमंग तरंगों का आना भी स्वाभाविक है।

सखियां सावन के गीत-गारियां गाने लगीं।

देखोरी मुकुट झोका ले रह्यो।
लै रह्यो यमुना के तीर। देखो०
मणिमय कुण्डल झलक रहे हैं।
सुरभित चलत समीर। देखो०
मुक्ता मणि कौस्तुभ मणि राजे।
वीर धरावे धीर। देखो०
क्षुद्र घन्टिका कटि तट सो है।
वरसत आनन्द नीर। देखो०
रत्न जड़ित नूपुर पग सोहे।
हरत जगत की पीर। देखो०

यहाँ होली का भी महोत्सव मनाया गया है। देखते ही देखते होली महोत्सव की सब सामिग्रियाँ एकत्रित हो गई। कुंकुम गुलाल रंग भरी पिचकारी सभी गुलाल वर्षा करने लगे। इस आनन्द में किसी को समय का ज्ञान नहीं है। इस उत्सव में राधाजी नन्दनन्दन बन गई नन्दनन्दन राधा रूप बन गये।

श्याम श्यामा सों
होली खेलत आज नई
नन्द नन्दन को राधे कीनो
माधव आप भई

बाजत ताल मृदंग झांझ ढप
नाचत थेई थेई
गोरे श्याम सामरी राधे
या मूरति चितई
पलटो रूप देख मोहन को
सुधि बुधि बिसर गई।

इस प्रकार रास मण्डल में सभी लीलाओं का उत्सव मनाया गया है।

ततश्च कृष्णोपवने जल स्थल ।
प्रसून गन्धानिलजुष्ट दिक् तटे ॥
चचारभृंग प्रमदागणा वृतो ।
यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥१३१॥

भगवान श्री कृष्ण चन्द्र प्रमदाओं से घिरे हुए यमुना के वन उपवन में थल क्रीड़ा एवं सभी प्रकार की जल क्रीड़ा कर रहे हैं। एक मद स्त्रावी गजराज की तरह उपवन में भ्रमण कर रहे हैं।

आगे आपकी जल क्रीड़ा है श्री यमुना पुलिन को देखकर तो सबकी जल क्रीणा करने की इच्छा हो गई। श्री बिहारी जी एवं बिहारिन जी सब सखियों के साथ श्री यमुना स्नान को पधारे। यह तो एक आनन्दमयी क्रीड़ा है। एक दूसरे पर पानी उलीचना। श्री बिहारी जी चारों ओर पानी उछांट रहे तथा सखियां भी चारों ओर से बिहारी जी पर पानी की वरसा कर रही हैं। यह अद्भुत जल विहार लीला है। श्री

यमुना जी की भी आज शोभा बढ़ रही है मानो श्रीजी ने अपना शृंगार किया है। चारों ओर देवलोक के सुमन बिखर रहे हैं। रस रास की वर्षा हो रही है। यह सब आनन्द प्रेम की लीला है। जब देवियों ने देखा कि बिहारी जी को अधिक परिश्रम हो रहा है। तब जल से निकल कर विहारी जी का शृङ्गार किया। उस समय व्रज देवियों के बीच में से प्रभु फिर अन्तर्धान हो गये। यह कैसा आश्चर्य है? अब तो हमसे कोई अपराध भी नहीं हुआ। व्रज देवियाँ श्यामसुन्दर को चारों ओर ढूँढने लगीं। बंशीवट यमुना तट एवं सभी कुन्ज निकुन्जों में प्रभु को देखा पर कहीं पता नहीं लगा। निराश होकर देवियाँ घाट पर आकर श्री कालिन्दी के पार के मैदान को देखने लगीं। उस समय घाट पर एक नौका खड़ी देखी। यहाँ एक नाविक भी यमुना तीर पर कम्बल ओढ़ कर सो रहा था। वह किशोरीगण नदी के किनारे पर खड़ी पुकार रही हैं। हा नाथ! हा रमानाथ! हा दीनानाथ! हा अनाथों के नाथ, आप कहाँ हो हमने तो कोई आपका अपराध नहीं किया।

एक गोपी बोली—बहिन, हमने उनकी भावना निकुन्ज का अनादर कर दिया इससे तो वह असन्तुष्ट नहीं हो गये। एक गोपी ने कहा—बहिन, वह ऐसी छोटी-मोटी बातों पर बुरा मानने वाले नहीं हैं। जो महान हैं वह छोटों के अपराध नहीं देखते। एक सुन्दरी ने कहा—सखि, श्री विहारीलालजी कहीं यमुना पार अपने गुरुदेव के पास तो नहीं चले गये। ऐसा विचार कर देवियाँ उस नाविक के पास आकर बोलीं—भैया, हमको यमुना पार जाना है। नाविक भी आलस्य में भरा था पर इतनी गोपियों को देख कर आश्चर्य में पड़

गया। वह अपना कम्बल सम्भालता नौका दण्ड को लेकर नाव पर चढ़ गया। गोपियाँ भी उसमें चढ़ गई एक ऐसा चमत्कार कि वह नौका बड़ी होती जा रही है। उसमें अनगिनती गोपियाँ चढ़ गई। बड़ी तेजी से नाव यमुना की बीच धार में पहुंच गई। नाव बहुत तेजी से चल रही है। उस समय नाविक श्री राधाजी से बोला :—

राधेत्वं परिमुंच नील वसनं ।
मारूह्य नौकामिमां ॥
वातो वारिद सम्प्रमाद् यदि वहेत् ।
मग्नाभवेन्नौरिदम् ॥
शुक्लं सद् वसनान्तर परिदधा ।
म्यादौ तवेदं वपुः ॥
श्यामं श्याम नवीन नीरद सर्मं ।
तक्रं समाच्छाद्यताम् ॥१३२॥

नाविक बोला—राधे, आप इस नील वस्त्र को त्याग दो कारण यह बादल जैसा दीख रहा है। कहीं इस वस्त्र को बादल समझ कर पवन ने झोका दे दिया तो नाव डूब जायगी। राधा—अरे नाविक मेरा तो नीला ही वस्त्र है। तेरा तो शरीर काला है। पहले तू अपने शरीर में मठा लेपन कर ले फिर पवन की बात करना। वह नील वस्त्र को बादल समझता है या कारे रंग को बादल समझता है। उस समय नाविक श्री किशोरीजी को उस झुण्ड में देख कर परम आश्चर्य में पड़ गया और बोला—हे तरुणि, आपके साथ बहुत गोपियाँ हैं। राधिकाजी परिहास कर बोली—यह नौका

है तरु नहीं तरि और तरु दोनों शब्दों की सप्तमी में तरौ बनता है। नाविक बोला—मैं तरणि कह रहा हूँ। राधाजी ने कहा—तरणि सूर्य का बोधक है। इस प्रसंग में सूर्य को लाने की क्या आवश्यकता है। नाविक लज्जित हो गया। राधाजी बोली—अरे नाविक, नाव तो तेरी नवीन है और नौका दण्ड भी नवीन मालूम पड़ता है। इससे हम सब यमुना पार जल्दी पहुंच जायगी। पर एक शंका है।

शंका निदानमिदमेव ममातिमात्रं,
त्वं चंचलो यदिह माधव नावकोऽपि ॥१३३॥

अरे नाविक, तू माधव की तरह अति चंचल मालुम पड़ता है। उस समय परिहास प्रिय उस नाविक ने एक ठोकर से नाव का तख्ता तोड़ दिया। अब तो उसमें पानी भरने लगा। गोपियां व्याकुल हो गई। हाय! अब हम सब डूब जायेंगी। हाय श्यामसुन्दर! दर्शन भी न हो सके। अरे भैया, तू ऐसी टूटी नाव क्यों रखता है। नाविक बोला—तुम्हारे वजन से या तुम्हारे आभरणों के वजन से यह नाव डूब रही है। देखो, तुमको तो अपनी जान की चिन्ता है। मुझे तो जानमाल दोनों की चिन्ता है। नाव न रहने से मेरे बच्चे भूखे मर जायेंगे।

गोपी बोली—बहिन, यह मल्लाह तो बड़ा मसखरा मालूम देता है। हां बहिन, कोई चोर मालूम देता है इसकी हमारे गहनों पर नीयत है। अरी, यह तो तैराक होते हैं। यह तो कूद कर निकल जायगा। एक गोपी ने कहा निकलेगा कैसे इसको पकड़ लो। चारों ओर से मल्लाह का कम्बर खींचने लगी। उसमें से श्यामसुन्दर प्रगट हो गये अब तो सभी

गोपियाँ हँसने लगी। भगवान बोले—गोपियों, यह हँसने का समय नहीं है। एक गोपी बोली—महाराज! यह मल्लाह का काम आपने कब से ले लिया है। भगवान बोले—अब आप सब मिल कर इस पानी को उलूचिये गोपसुन्दरी ने कहा—श्यामसुन्दर, अब हमको नाव डूबने का भय नहीं है कारण संसार सागर से पार लगाने वाला हमारे साथ है फिर इन छोटी-मोटी नदियों का क्या भय है।

देखिये, गोपियों की अखण्ड ब्रह्मांड नायक भगवान श्री कृष्णचन्द में कैसी भावना थी। उस समय आपने नौका किनारे से लगा दी। रास बिहारी श्री कृष्ण गोपियों से कहने लगे। देखो यज्ञ की समाप्ति पर ब्राह्मण भोजन कराना जरूरी होता है। आप भी अब ब्राह्मण भोजन कराइये। गोपी—प्रभुजी यहाँ इस समय कौन ब्राह्मण मिलेगा।

श्यामसुन्दर ने कहा—यमुना पार मेरे गुरुदेव दुर्वासाजी रहते हैं उनको आप भोजन कराओ।

एक गोपी ने कहा—श्यामसुन्दर, यह नाव तो आपने तोड़ दी। अब हम उस पार कैसे जायेगी। भगवान ने कहा—गोपियो; यमुना से प्रार्थना करो। हे यमुने यदि श्री कृष्ण चन्द्र बाल ब्रह्मचारी हैं तो तुम हमको मार्ग दे दो।

गोपियाँ नाना प्रकार के पकवान मिठाई चतुर्विध भोजन सामिग्री संजोय कर यमुना किनारे आ गईं। श्री यमुना जी से कहा—हे यमुने! यदि श्री कृष्ण जी बाल ब्रह्मचारी है तो तुम हमको मार्ग दे दो। यमुनाजी ने उनको पार जाने का मार्ग छोड़ दिया।

वह सब दुर्वासा जी के पास पहुंच गई। उनको सबने भोजन कराया। व्रज देवियां दुर्वासाजी को भोजन परोस रही हैं।

लड्डुआ नुकती रबड़ी पेड़ा,
खीर, जलेबी, खाजा
खुरमा, अमरस, मेवा, गौरस
नैनि मलाई ताजा
रसगुल्ला रसभरी समोसा
हलवा सरस करारी
सिरसा मोहन भोग वेसनी
रवणी विविध प्रकारी
सेव कचौरी दाल सलोनी
सोठ तलेवा न्यारी
निबू आम मुरब्बा चटनी
अदरख विविध तरारी
आम अनार नारंगी लीची
केला अम्बज खिरनी
सेव जम्बु अंगूर फालसे
सारदा किसमिस इरनी
वहु व्यंजन पकवान
सुगन्धित त्यार किये हैं
भर भर प्याले थार
सखी सब करन लिये हैं

दुर्वासाजी को भोजन करा रही हैं। सबके मन उल्लास में भर रहे हैं। जैसे भोजन करने वारे तैसे ही भोजन कराने बारे महामुनि को आज इच्छानुसार भोजन सामिग्री मिल रही है। गोपियाँ थक गई जैसे गिरराज बाबा को भोजन कराते-कराते गोप थक गये थे। अब तो एक व्रजकिशोरी जल की झारी ले आई।

जल झारी लाई सखि
सौरभ सरस मिलाय
अचवन पान करायकें
दर्पण दिये दिखाय

बस गुरुजी, अब अपने मुख के लिए स्वच्छ करो। समय बहुत हो गया है अब हमको यमुना पार जाना है। गोपियों ने गुरुजी की बड़े मान सन्मान से पूजा की है। कारण यह हमारे स्वामी के भी स्वामी हैं। अब देवियाँ अपने रीते पात्रों को लेकर यमुना किनारे आ गई पर श्री यमुना जी के गम्भीर वेग को देख कर रुक गई। अब उस पार कसे पहुंचे। उस समय कुछ गोपियाँ गुरुदेव से कहने लगीं। बाबा बताओ, अब हम यमुना के पार कैसे जायँ। उस समय महामुनि बोले देवियों, तुम यमुना से कहो कि यदि दुर्वासा जी केवल दूर्वा का ही आहार करने वाले है तो हमको तुम मार्ग दे दो। कुछ गोपियाँ तो आश्चर्य करने लगी कि इतना बड़ा भोजनी और अपने लिए दुर्वाहारी बताता है। उस समय बाबा को हँसी आ गई और बोले—व्रज रानियों, तुम शंका मत करो। जाओ जल्दी जाओ श्रीजी के पास वह तुमको अवश्य मार्ग दे देगी। वह करुणा की सागर हैं। गोपियाँ

यमुना तट पर आकर कहने लगी—यमुने हमको मार्ग दे दो। जैसे ही गोपियों ने यमुना से कहा कि दुर्वासा दुर्वाहारी हैं तो हमको मार्ग दे दो उसी क्षण यमुना पांज हो गई। सभी गोपी ब्राह्मण भोजन करा कर आ गई।

इसका आशय स्पष्ट है कि भगवान अनन्त कोटि बनताओं के साथ रहकर भी ब्रह्मचारी है तथा आपको रास के बाद ही योगेश्वर की उपाधि प्राप्त हुई है। यह है कामदेव की पराजय।

महामुनि दुर्वासाजी आज सभी गोपियों की सामिग्री अरोग गये। फिर भी दुर्वासा है वह दूब खाकर ही व्रत करते हैं और बरसों दूब के सहारे रह सकते हैं। अतः उनका नाम दुर्वाहारी कहलाता है। यज्ञ के अनन्तर ब्राह्मण भोजन भी हो गये। अब वह व्रज सीमन्तियां पुष्प निकुन्ज में आकर ही विश्राम कर रही है।

रास रासेश्वर भगवान श्री कृष्ण एवं रास रासेश्वरी श्री राधा एक दिव्य सिंहासन पर विराजमान हैं। सब साजों से सुसज्जित गोपियाँ बैठी हैं। एक साथ वीणा की झनकार होंने लगी मृदंग ध्वनि से निकुन्ज मानो ताल से नृत्य करने लगी। गोपियाँ श्री राधा कृष्ण के गुणानुवाद वर्णन करने लगी।

जय राधे जय राधे राधे
जय राधे जय श्री राधे
जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण
जय कृष्ण जय श्री कृष्ण

श्यामा गोरी नित्य किशोरी
प्रीतम जोरी श्री राधे
रसिक रंगीलो छैल छबीलो
गुन गरवीलो श्री कृष्ण
रासविहारिन रसविस्तारिन
पिय उर धारिनी श्री राधे
नव नव रंगी नवल त्रिभंगी
श्याम सुअंगी श्री कृष्ण
प्राण पियारी रूप उजारी
अति सुकुमारी श्री राधे
मौन मनोहर महामोद कर
सुन्दर वरतर श्री कृष्ण
शोभा श्रेणी महायोनी
कोकिल बैनी श्री राधे
कीरतवन्ता काम निकन्ता
श्री भगवन्ता श्री कृष्ण
चन्दा वदनी कुन्दा रदनी
शोभा सदनी श्री राधे
परम उदारा प्रभा अपारा
अति सुकुमारा श्री कृष्ण
हंसा गमनी राजत रमनी
क्रीडा कवनी श्री राधे

रूप रसाला नयन विशाला
परम कृपाला श्री कृष्ण
कांचन वेली रति रसेली
अति अलवेलि श्री राधे
सब सुख सागर सब गुन आगर
रूप उजागर श्री कृष्ण
रमणी रम्या तरु तर तम्या
सगुण अगम्या श्री राधे
धाम निवासी प्रभा प्रकाशी
सहज सुहासी श्री कृष्ण
शक्ताह्लादिनी अति प्रिय वादिनी
उर उन्मादिनि श्री राधे
अंग अंग टौना सरस सलौना
भुभग सुलौना श्री कृष्ण
राधा नामनिगुण अभिरामनि
श्री हरिधामनि श्री राधे
जय राधे जय राधे राधे राधे
जय राधे जय श्री राधे
जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण
जय कृष्ण जय श्री कृष्ण

इस प्रकार रास महोत्सव में सभी ने मिल कर यह श्री राधा कृष्ण के गुणानुवाद वर्णन किये। व्रज किशोरी गणों के तो राधा

कृष्ण ही सर्वस्व हैं। उनके दिव्य वैभव के दर्शन के उद्देश्य से ही यह रास क्रीड़ा हुई है।

रास रासेश्वर भगवान श्री कृष्ण चन्द्र की इस आनन्दमयी क्रीड़ा के दर्शन हेतु श्रुति मुनि देव सब गोपी रूप धारण करके प्रगट हुए हैं।

यह रस रास चरित हरि कीनों
व्रज युवतिन वांच्छित फल दीनो
ब्रज तिय सुख हित कुंज बिहारी
करी मास निशि षट उजियारी
साथ न ही युवतिन मन राखी
श्री भागवत कह्यो शुक भाखी
वेद उपनिषद् साख बतावें
ब्रह्मा शम्भु सहस मुख गावें
नारद शारद ऋषिय अनन्ता
कहत सुनत गावत सब सन्ता
सोरह सहस्र गोप सुध मारी
तिन के संग लाल गिरधारी
कियो रास रस रहस अगाधा
पूरन करी सवन की साधा

व्रजसुन्दरियों के आज मनोरथ पूर्ण हो गये वही देवियाँ रास रासेश्वर की आरती करने लगी।

लेआई सखि आरती बत्ती दिव्य जराय।
फेर फूल जल आरती करत फूल बरसाय॥

युगलवर राधा नन्दकिशोर

आरती युगल किशोर की कीजै
गौर श्याम को रूप रसामृत
नयनन भर भर पीजै। आरती०
मोर मुकुट सो मिली चन्द्रिका
ताको लख लख जीजै। आरती०
भूषन वशन अंग की जगमग
छटा हृदय भर लीजै। आरती०

इस प्रकार रास महोत्सव की समाप्ति पर सखियों ने रास विहारी जी की आरती की।

श्री रास बिहारी ने इस रास महोत्सव के कारण यह आश्विन शुक्ला पूर्णिमा की रात्रि भी जो शरद पूर्णिमा कहलाती है। यह प्रभु ने छह मास के बराबर कर दी थी पर किसी को इसका ज्ञान नहीं। यह छः महिना की रात बड़ी जल्दी बीत गई। शेष रात्रि में श्याम श्यामा को गोपियों ने शैया पर शयन कराया। अत्यधिक परिश्रम के कारण श्याम श्यामा को शीघ्र ही निद्रा आगई। गोपियाँ जहाँ बैठी थीं वहीं सो गई। जो वीणा बजा रही थी उसका हाथ वीणा पर ही रक्खा है। वह घोर निन्द्रा में पड़ गई। जो मृदंग बजा रही है। वह मृदंग के सहारे ही सो गई रात्रि बीत गई, प्रातःकाल हो गया। श्यामसुन्दर गहरी निद्रा में सो रहे हैं रस्तागीरों के आने जाने का समय हो गया है। अब श्यामसुन्दर को कौन जगाये। गोपियों ने वृन्दाजी से प्रार्थना की आप ही इनको जगा सकती हैं। श्री वृन्दाजी ने भगवान के जगाने को पक्षियों को संकेत किया कि आप श्यामसुन्दर को जगावें।

निशावसानं समवेक्ष वृन्दा
वृन्दं द्विजानां निजशासनस्थ
नियोजयामास स राधिकस्य
प्रवोधनार्थं मधुसूदनस्य ॥१३४॥

निकुन्ज के पक्षिगण बृन्दाजी का इशारा पाकर चहचहाने लगे दाख के पेड़ पर बैठी मैना बोलने लगी। आम के वृक्ष पर बैठी कोयल बोलने लगी। करोदा के पेड़ पर बैठा हुआ तोता बोलने लगा। पीलू के वृक्ष पर बैठे कबूतर गुनगुनाने लगे। प्रियाल पर बैठे मोर अपनी केका वाणी सुनाने लगे। लताओं में छिपे भ्रमर गुंजारन लगे। पृथिवी में घूमने वाले मुर्गा बोलने लगे। मुर्गा की वाणी ह्रस्व दीर्घ प्लुत में होती है कु कू कूं ।

कुक्कुटोप्य पठन् प्रात र्वेदाभ्यासी वटु यथा।

जिस प्रकार वेदाभ्यासी वटु प्रातः वेदाभ्यास करते हैं। उसी प्रकार कुक्कुट बोलने लगे। मुर्गा प्रातः सबसे पहिले बोलता है। मैना

गोकुल वन्धो जय रस सिन्धो
जाग्रहि तल्पं त्यज शशि कल्पं
प्रीत्यनु कूलाश्रित पर मूलां
बोधय कान्तां रतिभर तांतां ॥१३५॥

हे गोकुल वन्धो हे रस सिन्धो आपकी सदा जय हो। जागिये प्रभु, इस चन्द्र शैया को त्यागिये प्रभु और प्रीति के अनुकूल नीति से शोभित रति से परिपूर्ण श्री किशोरी जी को भी जगाइये।

याता रजनी प्रातजीतं
सौरं मण्डल मदनं प्राप्तं
सम्पति शीतल पल्लवशयने
रुचिमपनय सखि पंकज नयने ।।१३६।।

श्री राधाजी से प्रार्थना कर रहे हैं रात्रि अब व्यतीत हो गई प्रातःकाल हो गया है। भुवन भास्कर ऊपर चढ़ आये हैं। हे कमल नयने ! अब इस शीतल शैया को त्यागिये।

तोता :

श्री कृष्ण के अनुराग की गरिमार्थ में निपुण अति धीर मति वाला तोता जो वाक् चातुर्य में श्रेष्ठ था। वह श्री माधव को जगाने के लिए एक सुन्दर पद्यावलि बोलने लगा।

जय जय गोकुल मंगल कन्द
व्रज युवति तत भृंग्यरि वृन्द
प्रति पद वर्धित नन्दानन्द
श्री गोविन्दाच्युत नतशन्द ।।१३७।।

तोता की वाणी सुन कर श्यामसुन्दर उठ गये। कारण गोचारण के समय वह कीरकी वाणी सुन कर उठते हैं त्रिभुवन सुन्दर श्याम कैसी भी घोर निद्रा में रहते थे किन्तु तोता की वाणी सुनकर शैया त्याग देते हैं। कीर की वाणी ही गो सेवा का पाठ पढ़ाती थी।

रस्तागीर आने जाने लगे। गोपियाँ भी भगवान से आज्ञा लेकर जाने लगी। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान से संस्पर्श पाकर गोपियों की इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्द में विह्वल

हो गयी है। वह अपने-अपने शरीर को सावधान रख रही हैं। उनके केश बन्धन खुल गये हैं हारमाला टूट गई है सभी गहने अस्त व्यस्त हो गये हैं वह अपने को पूर्णतया सम्भालने में असमर्थ हो रही है। इस रास क्रीड़ा को देख कर स्वर्ग की देवांगनाये भी मिलन की कामना से मोहित हो गई है। अन्यान्य चन्द्रादिकों के मन भी चकित रह गये हैं। मन के अधिष्टात्री देवता चन्द्रमा की जब यह दशा है। तो मन की क्या गिनती और मन के पुत्र कामदेव की तो वहाँ क्या चल सकती है। उसे तो वहाँ से भागना ही पड़ा।

यह रास महोत्सव शरद् ऋतु में पूर्णिमा में मनाया गया कारण यह रात्रियाँ काव्य कथाओं के रस की आधार थी।

एवं शशांकाशु विराजिता निशाः
स सत्यकामोऽनुरता वला गणः
सिषेव आत्मन्यवरुद्ध सौरतः
सर्वाः शरद्काव्य कथारसाश्रयाः ॥१३८॥

यह रास पंचाध्यायी का रास महोत्सव का अन्तिम श्लोक है इसमें जो विशेषण दिये हैं। यह सब कामदेव पर विजय प्राप्त करने के हैं। जैसे सत्य काम। अनुरतावलागणः। आत्मन्यव रुद्ध सौरतः।

भगवान सत्य संकल्प है। जो कि सदा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं। गोपियों को वचन दिया था। तुम आगामी शरद् ऋतु की रात्रि में मेरे साथ रहोगी। कृष्णावतार सभी के गर्व दूर करने को हुआ है। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, यमराज, कामदेव आदि का गर्व नष्ट किया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि

श्री शुकदेव जी
एवं
परीक्षित महाराज

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं,
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं,
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।

को परास्त करने के हेतु ही आपका अवतार है। आत्मन्यवरुद्ध सौरतः।

इस लीला में काम भाव को तथा उसकी चेष्टाओं को एवं उसकी क्रियाओं को सर्वथा अपने अधीन कर रक्खा था।

रास माहात्म्य को सुनकर महाराज परीक्षित बोले :—

संस्थापनाय धर्मस्य
प्रशमायेतरस्य च
अवतीर्णो हि भगवान्
अंशेन जगदीश्वरः ॥१३८॥
सकथं धर्मसेतूनां
वक्ता कर्ताभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद ब्रह्मन्
पर दाराभिमर्शणम् ॥१४०॥

भगवान श्री कृष्ण चन्द्र सारे जगत के ईश्वर हैं। आपने पूर्ण रूप से अवतार लिया है। आप धर्म के वक्ता कर्ता रक्षिता हैं फिर भी आपने धर्म व्यतिक्रम किया जो पराई स्त्रियों के साथ रास किया। इसमें क्या अभिप्राय है।

श्री शुक उवाच :

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट
ईश्वराणां च साहसम्
तेजीयसां न दोषाय
वन्हेः सर्वभुजो यथा ॥१४१॥

श्री शुकदेवजी ने कहा--राजन्, ईश्वरों के साहस को कोई क्या समझ सकता है। उनमें धर्म व्यतिक्रम देख कर तुम विचलित हो गये। एक शक्तिशाली पुरुष जिस काम को कर सकता है क्या उसे सर्व साधारण कर सकते हैं। दार्शनिक परम्परा के अनुसार ईश्वर कर्म के बन्धन में नहीं फँसता। एक तेजवान पुरुष में ऐसे व्यतिक्रम नहीं देखे जाते। वह सर्व शक्ति सम्पन्न होता है। उसमें कोई भी दोष नहीं लग सकता।

ईश्वराणां वचः सत्यं
तथैवा चरितं क्वचित्
तेषां यत्स्ववचोयुक्तं
बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥१४२॥

ईश्वरों के वचन सत्य हैं। उनके आचरण को कहीं सत्य माने जैसा उनने कहा है। उसके अनुसार बुद्धिमान पुरुष को आचरण करना चाहिये श्री राम एवं श्री कृष्ण के ही प्रधान अवतार हुए हैं। श्री राघवेन्द्र रामजी ने जैसा कहा है वैसा ही किया है। अतः रामजी का कहना तथा करना दोनों ही आचरण करने योग्य हैं। इसी प्रकार श्री कृष्ण ने जो कहा है गीता वाक्य उनका आचरण करे। उनकी लीलाओं का तो ध्यान करना चाहिये। जो मनुष्य उनकी वाक्य निष्ठ प्रामाणिकता की अपेक्षा आचरणनिष्ठ प्रामाणिकता का सम्बल लेकर स्वयं धर्मातिक्रान्त स्वच्छन्द पथ का आश्रय लेते हैं वे बुद्धिहीन हैं। बुद्धिमान व्यक्ति के लिए महा पुरुषों की उन्हीं लीलाओं का अनुकरण श्रेयस्कर होता है जो लीलायें उनके उपदेशात्मक है वाक्य विन्यास के अनुकूल होती है अन्यथा पुरुष स्वयं विपत्ति में पड़ जाता है।

राजन्; सूर्य अग्नि आदि ईश्वर जो कभी धर्म व्यतिक्रम करते हैं इसमें तेजवान पुरुषों को कोई दोष नहीं लगता।

देखो, अग्नि सब कुछ खाता है किसी में लिप्त नहीं होता। जो अग्नि अपवित्र मृत देह का भक्षण करता है वही अग्नि यज्ञ की आहुतियाँ भी भक्षण करता है। मृत देह का भक्षण करने पर भी अग्नि को दोष नहीं होता।

तेजीयसां न दोषाय
वन्हेः सर्वभुजो यथा ॥१४३॥

अब तेजवानों के प्रभाव की बात सुनिये :—

प्रजापते ब्रह्मणो दुहित्रानुगमनाम्
इन्द्रस्याहल्या गृह गमनम्
सोमस्य गुरु स्त्री तारागमनम्
विश्वामित्रस्याभक्षमांसासनम्

प्रभृत्ति आदिनः सप्तर्षिणां शव भक्षणोद्योगः। अजीगर्तस्य पुत्र विक्रयः। पराशस्य दास कन्या संगश्च ग्राह्यः। तप आदि प्रभावोद्भूत तेजसा साहसस्यदग्धत्वाद्दोषाय पापाय नेति दृष्टान्तः वन्हेः सर्व भुजो यथा—गौ ब्राह्मणादि शरीरामेध्य दाहे—नाग्नेर्हत्यादि दोषो भवति तेजस्वित्यादिति।

जिन लोगों में इस प्रकार की शक्ति नहीं है उनको कभी ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए। यदि कोई मूर्खतावश ऐसा काम कर बैठता है तो उसका नाश ही हो जाता है।

विनस्यत्योचरेन्मौठयाद्यथा
रुद्रोऽब्धिजं विषम्

शंकरजी ने विष पान किया वह समर्थ है दूसरा तो विष पीकर मर ही जायगा। इसलिए तेजवानों के तो वचनों का ही पालन करना चाहिये उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये। गीता के वचनों के अनुसार चलना है। यह उनकी वाणी है। भाई ईश्वर के साथ भाव शुभ अशुभ कैसे जोड़ा जा सकता है।

भगवान जीवों पर कृपा हेतु ही मनुष्य रूप में प्रगट होते हैं। गोपी और उनके पतियों के तथा सम्पूर्ण शरीरधारियों के शरीर में आत्मा रूप से विराजमान सर्व साक्षी परम पति अपना दिव्य चिन्मय श्री विग्रह प्रकट करके लीला करते हैं? जिनके चरणारविन्द परागके सेवन से संतृप्त तथा योग के प्रभाव से समस्त बन्धनों को दूर करने वाले मुनिजन भी बन्धन मुक्त होकर स्वेच्छा से जगत में भ्रमण करते हैं। तब बताइये श्री कृष्ण चन्द्र, में यह दोष कैसे आ सकता है। राजन्, मैं यह जानता हूँ आपने इन साधारण बुद्धि वाले मनुष्यों के सन्देह निवृत्त करने को ऐसा प्रश्न किया है। अन्यथा शंका करते समय आप ऐसे वचन न कहते कि आप्तकाम–यदुपति इससे स्पष्ट है कि परीक्षित राजा के हृदय में कोई शंका नहीं थी यह तो अन्यान्य सामान्य पुरुषों को सन्तोष दिलाने को महाराज ने ऐसा कहा था।

यत्पाद पंकज पराग निषेव तृप्ता
योग प्रभाव विधुता खिल कर्म वन्धाः
स्वेरं चरन्ति मुनयोऽपिन नह्यमाना
स्तस्येच्छयाऽत्त वपुषः कुत एब वन्धः

श्री कृष्ण की माया का तो ऐसा प्रभाव रहा है। कि सभी

गोप अपनी पत्नियों को अपने पास ही मानते रहे। ब्रजवासियों की श्री कृष्ण के प्रति शंका नहीं हुई। यह योगेश्वर की लीला है चार वर्ष के थे जब ब्रह्मा जी को अपनी ईश्वरीय लीला दिखाई तथा आठ वर्ष की अवस्था में ब्रजवासियों को ईश्वरीय लीला के दर्शन कराये जिन ब्रजवासियों की महिमा ब्रह्माजी ने वर्णन की थी :—

अहो भाग्य महो भाग्यं
नन्द गोप ब्रजौकसाम्
यन्मित्रं परमानन्दं
पूर्ण ब्रह्म सनातनम्

अहा ! इन ब्रजवासियों के समान किसका भाग्य होगा। जो सनातन ब्रह्म परमानन्द जिनका मित्र है। उन महाभागी ब्रजवासियों को आपने यह लीला दिखाई है।

ब्रह्म रात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः
अनिच्छन्त्योययु गोप्यिः स्वग्रहान् भगवत्प्रियाः

ब्राह्म मुहूर्त हो गया पर किसी गोपी का भगवान के पास से जाने को मन नहीं कर रहा है पर भगवान के आदेशानुसार वह भगवत्प्रिया अपने-अपने घरों को चली गई।

अनुग्रहाय भूतानं मानुषं देह माश्रित भजते तादृशी क्रीड़ा यां श्रुत्वा तत्परो भवत्।

श्री बिहारी जी ने प्राणियों पर कृपा हेतु मनुष्य रूप धारण किया है और ऐसी-ऐसी लीलायें आपने की हैं जिससे प्राणी मात्र श्री कृष्ण परायण हो जाता है।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित से कह रहे हैं। महाराज सुनिये—श्री कृष्णचन्द्र की इस चिन्मय रास विलास लीला को जितनी बार श्रद्धा से पढ़ेगा या सुनेगा उसकी भगवान के चरणों में परा भक्ति बढ़ती ही जायगी और बहुत शीघ्र अपने हृदय के रोग काम विकारों से छुट्टी मिलती जायगी। उसका काम भाव सर्वदा के लिए नष्ट हो जायगा।

परात्पर भगवान की यह महारास लीला ही सर्वोत्तम है पर इसके लिए पात्र भी सर्वोत्तम होना चाहिए। कारण उत्तम पात्र में ही रासलीला का रस ठहर सकता है। बिना पात्र के वस्तु नष्ट हो जाती है। जैसी सामिग्री वैसा ही पात्र सम्भव है श्री वाररायणी भगवान ने श्री कृष्णचन्द्र की अन्य लीलाओं को नदी स्वरूप में वर्णन किया है और रासलीला को तो कूप के जल के समान बताया है कारण नदियों के जल को तो प्रत्येक व्यक्ति प्रयोग कर सकता है। पात्र नहीं है तो हाथों से ही पी सकता है। हाथ भी नहीं तो मुँह लगा कर भी पी सकता है। यहाँ अधिकारी एवं अनधिकारी का भी प्रयोजन नहीं है। सबको समान है। यह लीला सबको सर्वदा काल में मिल सकती हैं। पर रासलीला कूप जल के समान है इसके लिए तो डोरी की आवश्यकता है। प्रेम पात्र चाहिए और निष्ठा रूप डोर चाहिए इसीलिए इस अन्तिम पद्य में लिखा है।

॥ श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथवर्णयेद्यः ॥

बिना प्रेम श्रद्धा के रास पंचाध्यायी के कूप से एक बूँद भी रस की नहीं मिल सकती है। ऐसी निष्ठा होनी चाहिए हम इसी रस को पीयेंगे। इस जन्म में नहीं तो सौ जन्म में पीयेंगे। इसके हमको चाहे बार-बार जन्म लेना पड़े। कारण

सर्व वेदान्त सारं हि श्री भागवतमिष्यते ।
तद्रसामृत तृप्तस्य नान्यत्रस्या दतिः क्वचित् ॥

श्रीमद्भागवत सर्व वेदान्तों का सार है। भागवत रसामृत से तृप्त जन की फिर किसी में प्रीति नहीं रहती। बस रासोत्सव में ही रस की परम चरम स्थिति है।

रासलीला ही लीला मुकुट मणि हैं। इसको ही माधुर्य मुकुट मणि कहते हैं। इसको ही त्रैलोक्य सौभाग्य मुकुट मणि कहते हैं।

इस सौभाग्य सम्पत्ति का प्रसाद तो इन व्रजवासियों को ही मिला है। इसके लिए बैकुण्ठ लोकवासी भी तरसते हैं।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त रतेः प्रसादः ।
स्वर्योषितां नलिन गन्ध रुचां कुतोन्याः ॥
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड गृहीत कण्ठ ।
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥

व्रज देवियों का ही यह सौभाग्य रहा है। जो कि श्याम सुन्दर इनके गले में हाथ डाल कर व्रज वीथियों में भ्रमण कर रहे हैं। जैसा इनको व्रजनन्दन ने कृपा प्रसाद वितरण किया है। वैसा भगवान की परम प्रेमवती नित्य संगिनी वक्षस्थल पर विराजमान लक्ष्मीजी को भी नहीं मिला। कमल गन्ध की सी सुगन्धी वाली देवांगनाओं को भी यह प्रसाद नहीं मिला और तो किसको मिल सकता है।

जो सुख लेत सदां व्रजवासी
सो सुख सपनेहु नहिं पावत, जे जन हैं बैकुण्ठ निवासी।
ह्यां घर घर है रहो खिलौना, जगत कहे जाको अवनासी।
नागरिदास विश्व ते प्यारी, लग गई हाथ लूट सुख रासी।

कहने में कोई नहीं चूकता। हे रसिक गोविन्द! बैकुण्ठ में तो एक अकेली कान्ति से ही चरण सेवा करा लेते होंगे। यहाँ तो गोपियों के साथ गलबाही देकर घूमने की स्वतन्त्रता आपको मिली है।

इस परिहास के साथ ही इस श्लोक के व्रजवधु शब्द पर ध्यान आता है।

विक्रीदितं ब्रज वधूभिरिदञ्च विष्णोः

व्रज युवतियों के साथ जो रासलीला विलास व्रजवधु—यह एक केवल ब्रज के गोपों की वधू नहीं है। इसका भाव तो यह है। श्री कृष्ण को प्रेमपाश में बांधने वाली वधू। बध्नाति कृष्णं स्व प्रेम रसनया अथवा ऐसा कहो वह ब्रज वधू स्वयं प्रेमपास में बँधी हुई है। बध्यन्ते श्री कृष्ण प्रेम रसनया इस प्रेमपाश में बंधी रहने के कारण ही उनने दुर्जर गेह शृंखला को छिन्न-भिन्न कर दिया दुस्त्यज आर्य पथ का त्याग कर दिया। वास्तव में वधु तो इनका ही नाम है। इनको साधारण वधू मत समझना।

उद्धव जी ने मथुरा जाते समय कहा है :—

वन्दे नन्द व्रज स्त्रीणां
पादरेणुमयीक्षणशः
यासां हरि कथो दगीतं
धुनोति भुवनत्रयम्

मैं तो इन नन्द व्रज की स्त्रियों के चरण रज की निरन्तर वन्दना करता हूँ। जिनकी हरि भक्ति ने त्रिभुवन को पवित्र कर दिया है। इसी से व्रज रज को भक्तजन मस्तक चढ़ाते हैं और वही इसका स्वाद जानते हैं। परम सन्त इसी रज में वृक्षों के रूप में जन्म धारण करते हैं। कारण धूलि सदा हमारे ऊपर पड़ा करे।

धन्या धूलिरयं धुनोति धरणे,
दुःखं धुनीतेतराम् ।
धीराणां धुरमंहसो धृति मतां
धैर्याध्वर ध्वसिनी ।
श्री गोविन्द पदार विन्द पगयो
र्या मिन्दिरा सुन्दरी ।
नन्दीशोऽप्यर विन्दजोऽपि दिविसद्,
देवैः समं विन्दति ।

यहीं तक इस रज का माहात्म नहीं है। यह तो धन्या है धरणी के समस्त दुःख को दूर करने वाली धीरों के पातको को दूर करने वाली है। धैर्य से थके पुरुषों के श्रम को दूर करने वाली है। यह श्री गोविन्द के पदारविन्द की धूलि जिसको इन्दिरा लक्ष्मी सदा धारण करती है। नन्दीश महादेवजी तथा ब्रह्माजी देवताओं के साथ अपने-अपने लोकों में इसको धारण करते हैं।

महारास की कथा में व्रज देवियों की सौभाग्य सम्पदा का ही वर्णन किया है। एक मात्र प्रेम की सर्वोपरि ध्वजा गोपियाँ थी। आनन्द की सीमा ही यहाँ तक है।

तपः सीमा मुक्तिः सकल सुख सीमा वितरणं
कला सीमा काव्यं जनन सुख सीमा सुवदना
श्रियां सीमाह्लादः सुकृत जप सीमाश्चित भृति
भियां सीमा मृत्युः श्रवण खुख सीमा हरिकथा

तप करने वाले को अन्तिम फल (सीमा) मुक्ति है। इसी प्रकार सभी सुखों की सीमा वितरण है दान करना। कलाओं की सीमा काव्य है। जनन सुख की सीमा तो सुवदना तक ही है। भय की सीमा मृत्यु है। लक्ष्मी की सीमा आह्लाद है। जप की सीमा है चित्त का सावधान रहना तथा श्रवण सुख की सीमा तो हरिकथा है। इससे आगे और कोई सुख नहीं है।

॥ इति रासक्रीड़ा वर्णन नाम पंचमोऽध्यायः ॥